

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182527

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83.1/P 611 Accession No. G.H. 982

Author दीक्षित, बलभद्र | 1

Title ला-मजहब | 1939

This book should be returned on or before the date
last marked below.

ला-मज़हब

(कहानी-संग्रह)

लेखक
बलभद्र दीक्षित



प्रकाशक
पटना-पब्लिशर्स
बाँकीपुर, पटना

प्रथमावृत्ति

प्रकाशक
श्रीरामचंद्र त्रिवेदी
पटना-पब्लिशर्स
बाँकीपुर, पटना

Checked 1965

Checked 1969

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ





ददू ! (दीनबंधु दीक्षित)

जीवन के प्रभात में ही तुमने मुझे यह सुझा दिया था कि गरीबी-अमीरी, श्रेष्ठता-अश्रेष्ठता मूर्खों के दिमाग की चीज है। उधर तुम्हारी पेंशन के गठरी-भर रुपए आते थे, इधर तुम गोमती-किनारे अपने चमार और धोबी मित्रों के साथ नित्यप्रति एक बड़ा गट्टर घास छीलते थे। तुम आठ बरस के थे, तब दो पैसे दिन-भर की निरवाही के लाकर बड़े गर्व से मा को देते थे। अंबरपुर के कुली और किसान तुम्हें अपना सलाहकार मानते थे। 'ला-मजहब' मैं तुम्हारी स्मृति को देता हूँ।

तुम्हारा भद्र

सूची

				पृष्ठ
१. ला-मज्जहव	...	...	...	१
२. सन्निपात	...	...	...	१२
३. पाँखी ...	...	...	...	१७
४. क, ख, ग, घ	...	...	...	४६
५. ढाई अच्छर	...	...	...	५६
६. चितादास की गोली	...	...	...	७२
७. साथी ...	...	...	...	८३

ला-मज़हब

(१)

ट्रेन एक बजकर कुछ मिनट पर छूटती थी। हम दोनों वक्त से कुछ पहले पहुँचे। स्टेशन के पार्क में सिर्फ़ बात के लिये बात कर रहे थे।

शर्मा ने गंभीर होकर कहा—“आप मुझे ठीक समझे। ईश्वर और धर्म के बारे में मेरा मत बहुत सोधा-सादा है। जहाँ नास्तिकता का अंत हो जाता है, ठीक वहीं से मेरी आस्तिकता शुरू होती है। मैं कैसे कहूँ कि मैं आस्तिक हूँ या नास्तिक। मुझे कोई आस्तिक कहता है, कोई नास्तिक। मैं दरअसल हूँ कुछ भी नहीं। मेरा खयाल है, मैं किसी धर्म को भी नहीं मानता। और, अगर मानता हूँ, तो वह, जो मनुष्य-मात्र का है। मेरे पिता को आप जानते हैं; मेरी ट्रेनिंग को भी। सच तो यह है कि मुझे इन बातों में पढ़ने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती। पहले बीज बना या दरखत, यह बात समझ में न आने से ईश्वर नहीं है, इससे कहीं अधिक, ईश्वर है, जान पड़ता है। वेदों का नेति-नेति कितना शांतिप्रद है।”

कार्तिक शुक्ल का कुछ ही कम पूरा चाँद खिला था। बेंच पर हम बैठे थे। छोटे-से पार्क के पेड़ को खूबसूरत बनाकर वह खुद खूबसूरत बन रहा था। झिलमिल छाया में शर्मा

जितने भव्य थे, उससे भी अधिक जान पड़ रहे थे। इस वक्त, वह हमारी युनिवर्सिटी के प्राण हो रहे थे। फिलॉसफी की पी-एच-डी० इसी साल पूरी हो रही थी। आकार-प्रकार इतना स्वस्थ और सुंदर कि अँगरेजी विभाग का स्कॉच लेक्चरर इन्हें ग्रीक सोल्जर कहकर पुकारा करता था। मुझे उनके हिंदुस्थानीपन में सीमा-प्रांत के पठान की बू-बास और शकल-सूरत भली लगती थी। बड़ी आँख, उन्नत ललाट, गौर वर्ण और जोशीली बात पर बार-बार मुँह पर खून का दौड़ आना उनकी विशेषताएँ थीं।

ट्रेन आकर चल पड़ी।

जंक्शन से चलते वक्त, हमारा थर्डक्लास का कमरा क़रीब-क़रीब खाली था। मैं ऊँघ रहा था; शर्मा अस्त्रबार पढ़ रहे थे। गाड़ी छूटते-छूटते डिब्बे में दो औरतें आईं, मेरी खिड़की से दूसरे छोर चली गईं। रेल जोरों से चलने लगी। कहीं से टिकट-चेकर साहब आए। शर्मा का और हमारा टिकट देखकर औरतों की ओर चले गए। टिकट के लिये उनसे कुछ भी न पूछकर अपनी जेब की शायद मोमोबुक, रेल की चाल पर तेज़ होती बत्ती में, देखने लगे। मेरे कानों की चेतना रेल की छक-छक पर सोलह मात्रे के बोल बाँधकर आँख खोलने-मुँदने लगी। टिकट-चेकर कब गए, नहीं मालूम। क़सबे के स्टेशन पर फिर पाँच-छ सज़्जन दाखिल हुए, जो उन दो औरतों की ही ओर रह गए। हमें किसी ने छेड़ा-छाड़ा नहीं।

गाड़ी के फिर कुछ चलने पर आगंतुकों के कई प्रश्नों का एक साथ जवाब देता हुआ स्त्री-कंठ, ध्वनि में तेज, लेकिन बहुत शाइस्ता, मुझे सुन पड़ा। “जी हाँ, बड़ी मगरूर है। शादी अपनी ही मर्जी से नहीं करती; खूबसूरत होना तो अपने बस की बात नहीं; माफ़ कीजिए, हमें कुछ नहीं चाहिए।” किसी ने फिर पूछा—“सिगरेट् पियोगी?” जवाब मिला—“मेरे पास बीड़ी हैं।”

मैं उठ बैठा; सवा तीन बजा था। शर्मा अखबार रखकर कुछ लिखने लगे। आनेवाले एक साहब कोट-पतलून में, डली, कत्था, चूना, तंबाकू अपने ढंग से खाते; खुदबखुद बाग-बाग; औरत के शोख जवाबों पर हुए जा रहे थे। मेरी जिज्ञासा बढ़ी; उधर गया। शर्मा के लिये जैसे कुछ हो ही न रहा हो। उनका अपने ऊपर का क़ाबू हम लोगों में मशहूर था; कोई निबंध लिख रहे थे।

स्त्रियों में एक पैंतीस-चालीस साल की प्रौढ़ा थी, दूसरी बीस के अंदर-ही-अंदर युवती। पोशाक गंदी नहीं, लेकिन सादी, और फटी ज़रूरत से ज्यादा। दोनों महाप्रसन्न। युवती एक छोटी, फटी किताब पढ़ने में मग्न। लोगों के बहुत बेहूदे सवालों का जवाब प्रौढ़ा बड़ी शांति से देती थी। लड़की अपनी बड़ी आँखों से, जिसकी ओर चाहती, देख देती थी।

एक मियाँ साहब ने अपनी सफ़ेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा—“माफ़ करेंगी जनाब, आप फ़कीरन से ज्यादा पहाड़ी जागन जान पड़ती हैं।”

“जी, फ़कीरों के भी एक अपना दिल है। उसके खिलाफ़ न चलना ही इंसानियत है। लड़की की गुस्ताखी शायद इसी-लिये आपको चुभ रही है।” प्रौढ़ा ने शांत उत्तर दिया।

ख़दर में, एक महाशय ने हार्दिक सहानुभूति-पूर्वक कहा—
“खेद है, भारत की शक्तियाँ आज इतनी दुर्दशा-ग्रस्त हैं। आपकी यह दुरवस्था, उस पर भी युवती कन्या अविवाहिता !” उन्हें अपनी जवान (अविवाहिता) बहन की याद करके रुलाई आ गई।

प्रौढ़ा ने विचार-पूर्वक कहा—“इस वक्त, दुनिया की बहुत-सी मुसीबतें ऐसी हैं, जिन्हे अगर हम न चाहें, तो अपने सर हरगिज़ न लें।”

लड़की आँखों-आँखों प्रौढ़ा का साथ देते, मुस्किराकर खिड़की के बाहर देखने लगी। प्रौढ़ा ने फिर कहा—“आप हमें देखकर जितने दुखी हो रहे हैं, वास्तव में उतने हम लोग हैं नहीं। इस वक्त, किसी ख़ास वजह से हमें इस तरह रहना पड़ रहा है। जो बात दूसरे के हाथ की है, उस पर अपना बस नहीं। लेकिन जिस बात को ख़ुद न चाहें, उसे तो हम हरगिज़ नहीं कर सकते।”

रेल की स्पीड कम होने लगी थी। अगले स्टेशन पर कई लोग उतरने को थे। प्रौढ़ा ने और दो-एक चोटें नक़ली आत्म-स्वतंत्रता के खिलाफ़ की।

चलते-चलते एक धार्मिक सज्जन ने बहुत विनम्र पूछा—
“क्या आप ईसाई हैं ?”

प्रौढ़ा ने बहुत नर्म होकर कहा—“जो, नहीं तो।”

‘मियाँ साहब ने अपना भोला कंधे पर रखते हुए कहा—“आप मुसलमान तो क़रीने से हो ही नहीं सकतीं। अछूत हिंदू भले हों।”

प्रौढ़ा हँसने लगी।

लड़की, आदमियों की आश्चर्य-भरी मुद्राओं पर प्रसन्न, गूँगी-सी कभी-कभी प्रौढ़ा की ओर देख देती थी।

“आखिर कोई मज्जहव तो होगा ही ?” मौलाना ने रुकी ट्रेन के बाहर से, चलते आखिरी सवाल किया।

“इंसान के लिये यह लाजिमी नहीं कि वह किसी-न-किसी धर्म में हो ही। हम लोग ला-मज्जहव हैं।” प्रौढ़ा के कथन में अब भी कोई जोश अथवा धक्का न था।

शर्मा ने एक बार आँख उठाकर दोनों को देखा, फिर अपना काम करने लगे।

मियाँ साहब ‘शिश’ कहकर, नफरत से फिरकी की तरह मुड़कर, स्टेशन की ओर चल दिए।

(२)

गाड़ी फिर चल दी। औरतों की जिंदादिली मुझे खूब अच्छी लगी। दर्जे में अब हम चार रह गए—इस सिरे पर मैं और शर्मा; उस सिरे पर दोनों औरतें। सबेरा हो रहा था; शर्मा ने लिखना बंद कर दिया। चादर में मुँह ढके मैं गाड़ी की गति में कमी का अनुभव करते-करते शायद उसके रुकने तक रुपकी में आ गया। अर्द्ध-तंद्रिल अवस्था में मैंने रेल की सीटी

सुनी, और उसके चलने का हिलना भी महसूस किया कि एक क्षण में दस्ता-पुश्ती की 'धड़'-'पड़' में उछलकर क्या देखता हूँ ; स्टेशन के खिलाफ रुख, दरजे की खुली खिड़की से शर्मा ने किसी शख्स को ठोकर मारकर बाहर कर दिया है। साथ ही, मेरे करीब पहुँचने तक, दो शख्सों की गर्दनें दाहने और बाएँ हाथ से रोक ली हैं। वह जवान लड़की उनकी छाती से कनपटी का सहारा लिए हुए चिपटी, कमर से ऊपर बिल्कुल खुली हुई, खड़ी है। झटके से पुरानी कुरती फट गई है, प्रौढ़ा ने जंजीर खींच ली है, जिससे गाड़ी खड़ी हो रही है।

मैंने छूटते ही शर्मा के बाएँ हाथ के आदमी पर बहुत करारे घूँसे का वार किया। यह टिकट-कलक्टर साहब थे। हैट जाकर अलहदा गिरी, और खोपड़ी 'खट' से दर्जे की दीवार से बजी। शर्मा के दाहने पंजे में वही, डली, कत्था, चूना, तंबाकू अपने ढंग से खानेवाले, खूद-खूद बाग-बाग, कोट-पतलून में, साहब बहादुर थे। मुझे क्रोध से अधिक हास्य और आश्चर्य हुआ, थोड़ा दुःख भी।

एक क्षण में परिस्थिति मेरा समझ में आ गई। युवती अब भी शर्मा को भेंटे खड़ी थी, भय से अधिक लज्जा में सिकुड़ी। मेरी चादर मेरे साथ ही आ गई थी। प्रौढ़ा ने उसे घसीटकर लड़की को ढक दिया, फिर अपनी ओर खींच लिया।

गाड़ी जंगल में खड़ी थी। भीड़ का क्या कहना। सुबह थी। बाबू लोग दतून-मंजन करते, लोटे का पानी छलकाते, धोती

सँभालते, कोई-कोई रोते बच्चे को गोद में लिए इधर ही दौड़े चले आ रहे थे। घटना और परिस्थिति किसी की भी समझ में न आ रही थी। पँचहत्थे जवान शर्मा ने इन दोनों सींकिया जवानों की खोपड़ियाँ भी आपस में लड़ा दी थीं, जिससे चुटहिल गीध की तरह वह क्षमा माँगती आँखों से लांगो को देख रहे थे।

प्रौढ़ा और लड़की का रुख देखते ही मुसाफ़िरों में से एक पारसी बुढ़े बाबा ने दोनों अभियुक्तों की यह सजा तजवीज़ की कि वे अपने-अपने मुँह में चार-चार थप्पड़ मारें, और कान पकड़कर उठा-बैठी करें। बग़ैर किसी विरोध के दोनों ने ऐसा ही किया, और लड़की के पैरों पड़ गए। ट्रेन फिर चल दी।

शर्मा अगले स्थान पर जाकर 'शेव' करने लगे; उसी अपनी सदा प्रसन्न, अविचल मुद्रा में। किसी से न कुछ कहना, न सुनना ! एक कलाई कमबख्तों के नाखून या किसी और धक्के से झिल गई थी, उसे देख मन-ही-मन मुस्करा दिए। उनके लिये जैसे कोई विशेष घटना हुई ही न हो।

मैं दोनों स्त्रियों के पास ही बैठ गया। मेरे आग्रह पर प्रौढ़ा ने अपना जीवन-वृत्तांत और इस लड़की का संबंध बतलाया। बड़ा अपूर्व था। कितने लोगों के सताए हुए ये लांग थे। ईश्वर और धर्म से वह आजिज़ आ गई थी। उसने कहा, उसके साथ जितने भी अन्याय हुए हैं, सब धर्म और ईश्वर के नाम पर। उसका विश्वास था, दुनिया-भर में इस वक्त जो भी

अन्याय हो रहा है, सब ईश्वर और धर्म की आड़ में। प्रौढ़ा की एक-एक भाव-भंगिमा, उसका निर्भय, सच्चा बयान मुझे अवाक् किए देता था। उसने अपनी वेश्या-वृत्ति के दिनों जिस तरह इस लड़की को लावारिस, खैरी के जंगल में पाया था, कैसे साफ-साफ बतला दिया। थोड़े दिन पहले, शहर में उसका साथ एक सहृदय चीनी सौदागर से हो गया था। उसके मर जाने पर, अब जिधर जा रही है, एक पहाड़ी जंगली देहात के पुरवे में इसकी भोपड़ी है। अनाथ लड़की इमे अपनी मा जानती है। उसने खुद हा इसकी मदद से सुंदर भाषा-ज्ञान प्राप्त कर लिया है। बल्कि एक अमेरिकन सालवेशन आर्मी के मकतब में बच्चों को उर्दू पढ़ाने के लिये नौकर भी रख ली गई थी। लेकिन चूँकि उसने ईसाइयत नहीं कबूल की, इसलिये हटा दी गई। वे लोग किसा धर्म की नहीं हैं, इसलिये हरिजन तक उन्हें फकीर समझते हैं। और, दरअस्त ये लोग फकीर हैं नहीं, इसीलिये इतनी गरीब हैं।

(३)

जंगल का स्टेशन आ रहा था। लड़का ने मेरी चादर ऐसे ओढ़ ली, जैसे उसे अब उतारनी न हो। मैंने प्रौढ़ा से कहा—“यह बोलती बहुत कम हैं। शायद आज की घटना से सहम गई हैं।”

अब लड़की से खामोश न रहा गया। उसने मुस्किराते हुए कहा—“आज यह पहला ही अवसर तो न था ! हमें हर वक़्त अपने लिये जिम्मेदार रहना पड़ता है।” फिर ज़रा लजाते

शर्मा की ओर देखकर कहा—“यह तो कहिए, उन महाशय ने मेरा पूरा भार अपने सर ले लिया, नहीं तो . , फिर मेरी ओढ़नी और कुरती ने, एक कमजोर साथी की तरह ऐन मौके पर, कायर होने के लिये मजबूर किया।” उसकी कमर में एक छोटा और तेज छुरी थी, जिसे दार्शनिक मुद्रा में मुझे दिखाया।

अब शायद शर्मा का भी जी चाहा कि इन लोगों को बिदाई देने के पहले कुछ बात कर लें; हाथ में एक बड़ा पोथा लिए आकर आप मेरी बगल में बैठ गए। लड़की के मुँह पर खर्दी लाने के लिये थोड़ी सुखी क्षण-भर झलक गई। यद्यपि अधिकतर वह अपनी मामूली ही हालत में रही।

शर्मा ने लड़की की ओर इशारा करके मुझसे कहा—“इनसे जब जल्द नीचे जाने के लिये कहा गया, तो मैं समझा, शायद वे लोग इन्हीं के घरवालों में से थे, स्टेशन पर लेने को आए थे, और चूँकि ट्रेन छूट रही थी, इस कारण वैसी परिस्थिति थी।”

लड़की ने शर्मा का ओर देखकर, स्थिति का आनंद लेते हुए, प्रौढ़ा से कहा—“शायद आप हालत को इसलिये और जल्द समझ गए कि मैंने उन पान के शौकीन साहब की नाक पर उठते ही एक घूँसा दिया, उसी के सबब उनके खून चलने लगा था।”

प्रौढ़ा ने शर्मा और लड़की से हँसकर कहा—“मैंने खंजीर खींचकर आप लोगों की कुछ कम मदद नहीं की।” क्षण-भर के लिये शर्मा और लड़की की आँखें लड़कर इधर-उधर भग गईं।

मुझे भी घटना का निगलापन स्मरण करके हँसी आ गई।
बरसात के बाद रेल की पटरियाँ ठीक की जा रही थीं जिससे रेल मचल-मचलकर चल रही थी। शारदीय प्रातः-सूर्य की किरणें हम सबको, समान रूप से, सुखस्पर्श दे रही थीं। मस्संग ऐसा अच्छा लग रहा था, शायद हम सब लोग यही चाहते थे कि स्टेशन जितनी दूर हो जाय और जितनी देर में आए, उतना ही अच्छा।

प्रौढ़ा ने कहा—“कुछ दिन पहले मैं यह चाहती थी कि इस रूपराशि (लड़की) के द्वारा समाज से की गई अपनी बेइज्जती का बदला लूँ, लेकिन ज्ञानालोक में वह प्रमाद साबित हुआ। पंडितजी, समाज हृदय-हीन होता है। आवेश में अपनी दुर्गति करा डालने से कोई नतीजा नहीं।”

मुझे आश्चर्य-मिश्रित एक सुख यह लग रहा था कि ये लोग इतनी निर्धन अवस्था में होते हुए भी धन और धनी की कुछ परवा न कर रही थीं। खूब बातें हुईं। प्रौढ़ा का खयाल था, दुनिया में कोई किसी से बड़ा-छोटा हो ही नहीं सकता। अगर कोई एक बात में बड़ा है, तो दूसरी में उतना ही छोटा ! हो सकता है, एक गरीब किसान की लड़की इतनी सुंदरी हो कि एक शाहजादी भी उतनी न हो। गरीबी-अमीरी के बारे में लड़की का खयाल था, अधिकतर वह लोगों के दिल और दिमाग में रहकर अनर्थ करती है।

शर्मा ने लड़की के विचारों पर मुग्ध होते हुए पूछा—“तो

आपका खयाल है कि दुनिया में अमीरी-गरीबी का प्रश्न अब तक रहा है, और आगे भी रहेगा ?”

लड़की ने निश्चित उत्तर दिया—“अगर बहुत लोगों का यह खयाल सही है कि दुनिया में अच्छाई-ही-अच्छाई ख़्वाह बुराई-ही-बुराई नहीं रह सकती, तब तो यह साफ़ हो जाता है कि कम निर्धन और कम धनी दुनिया की शांति में बाधा नहीं दे सकता।”

मेरी जैसे आँखें खुल जायँ। मैं भी यह न समझ पाया था कि एक गाँव के हर शख़्स को पाँच-पाँच अथवा पचास-पचास रुपया बाँटकर बराबर कैसे किया जा सकता है।

स्टेशन आ गया। इन्हें यहीं उतरना था।

मैंने चलते वक़्त लड़की को पाँच रुपए दिए। बिला किसी फ़िक्क के, जैसे कोई अपने सुहृद् से लेता है, उसने ले लिए।

हाँ, एक घटना मुझे अब तक नहीं भूलती। चलती ट्रेन से शर्मा का रुमाल हवा भरकर उड़ा। खिड़की से निकलकर लड़की के मुँह से लिपट गया। उसकी आँखें मुँद गईं, लेकिन फ़ौरन् वह उसे छुड़ाकर देने दौड़ी। रेल तेज़ हो चुकी थी। शर्मा को सगबगते देख, मैंने पुकारकर कहा—“धन्यवाद ! अब उसे आप ही रख लें। वह अब आप ही के पास रहना चाहता है। हम कल वापस होंगे।”

मैं यह भी देखने से न चूक सका कि कितने लोग उन दोनों का किन-किन आँखों से देख रहे थे।

सन्निपात

(१)

चार दिन कड़े बुखार में रहने के बाद पन्नू आज अपनी हालत सँभलती देख रहे थे । बीमारी और ग्रह-दशा खराब थी, इसलिये उन्होंने मन-ही-मन भजन-पूजन शुरू कर दी थी । वह कहते थे, उनके गुरुदेव की आत्मा ने मिलकर उनकी कुंडलिनी शक्ति जाग्रत कर दी है, वह अब अजर-अमर हो गए हैं ।

सास दवा देने चली, उन्होंने कहा—“ठहरो, मैं अब सिद्ध हो गया हूँ; मुझे दवा खाने की जरूरत नहीं; जो छुवेगा, वह भस्म हो जायगा, अमृतपान कर चुका हूँ ।” वह लड़खड़ाते उठकर खाट से भागे; चिल्ला रहे थे—“देखो, मेरे सोने के पंख उग आए हैं ।” घर-भर रो रहा था । उन्हें घोर सन्निपात था ।

पन्नू, पन्नालाल, अकुलीन कहे जानेवाले ब्राह्मणों में से थे । ब्याह छुटपन में हो गया था । विधवा मा ने इस लोभ में कर लिया था कि मौका चूकने से फिर लड़की मयस्सर न होगी—मजदूरी-पेशा आदमी ठहरे, क्या मालूम, कब हाथ भरा हो, कब खाली । पन्नू की स्त्री मुग्गी भी विधवा की लड़की थी ; उसके भी दो छोटे भाई, मा का मा और एक अंधा मामा था । ब्याह के पहले पन्नू की मा ने, पन्नू की नाबालिग सलाह से, इन सबको जीवन-पर्यंत भरने (खिलाने) का वादा किया था ।

न होते को भूख भी कितनी लगती है । किसी को खाने में

आँत न थी। पन्नू का सगा—छोटा सात साल का—भाई तुला हुआ एक सेर अन्न का भोजन चट कर जाता।

गृहस्थी का दार-मदार पन्नू पर ही था।

पन्नू खाट में रस्सी से बाँधे जा रहे थे। लेकिन उन्हें जान पड़ रहा था कि मुरगी की मा पागल हो गई है। उसी को रस्सी में बाँधकर रक्खा जा रहा है। ज्ञान हो जाने से उन्हें अपने गत जीवन पर निर्वेद-सा हो रहा था। चूँकि ज़र्रे-ज़र्रे में जीवन है, उनकी पुष्ट बात घर की टूटी दीवार भी अब सुन सकती थी। उन्होंने कहा, भाई मेरी उम्र बाईस-तेईस साल की हुई। मित्र कहा करते हैं, विवाह बड़ी अच्छी चीज़ है; लेकिन मुझे अनुभव यह बतलाता है, वह दो कौड़ी का होता है।

ब्याह न हुआ होता, तो मा और छोटे भाई की परवरिश को नौकरी का बारह रुपया महीना काफ़ी था। लेकिन जब मुरगी से संबंध हो गया, उसकी मा और दो भाई कहाँ जा सकते थे; मामा अधा। तीन-चार गाय-भैसों बुड्ढी थीं। उन्हें भी बाँधकर खिलाना पड़ा। इस समय पन्नू का हृदय और मस्तिष्क विकार-हीन होता जा रहा था। उन्होंने कहा—“अब मैं त्रिकाल-दर्शी हुआ जा रहा हूँ।”

मा और सास रोने लगीं। पन्नू को बड़ा आश्चर्य हुआ, कहा—“रोओ मत, अब गुरुदेव की महिमा से मैंने चार आदमियों के बराबर काम करने की शक्ति प्राप्त कर ली है। रसायन बनाना भी सीख लिया है। चार सेर सोने में घर क्या,

पूरा गाँव-भर, दोनो वक्त., भर पेट खा होगा, और बहुत-सी जूठन गाय-भैंसों को बच रहा करेगी।” पन्नू यहीं लेटे-लेटे, अपने एक कलकत्ते में बैठे मित्र से, बात कर रहे थे। मुरगी की शिकायत हो रही थी कि जब से साथ हुआ, घर का काम-काज करने में वह बड़ी होशियार थी; लेकिन थोड़े दिनों से बेवकूफ हुई जा रही है। दुबली होकर कहने लगी है कि वह अब शायद मर भी जायगी। जब मरना बिलकुल आदमी के बस की बात है, तो वह अभी क्यों मरे? मेरी मा की चक्की पीसने में मदद क्यों न करे। ज़िदगी काम करते-करते मर जाने को मिलती है। हाँ, मैं अपनी मुरगी से प्रसन्न नहीं हूँ, लेकिन संतुष्ट तो हूँ ही।

(२)

पुरवे के पूरब, पन्नू के पुरखों का बनाया हुआ, बहुत छोटा घर था, जिसमें दो-तीन की जगह, नौ आदमी रह रहे थे। कोठरा में मरीज़ रक्खा गया था, छप्पर के घर में अल्ला-बल्ला और आदमी भरे हुए। खुले आँगन में दो गाएँ और एक (खुश्क) भैंस बँधी ठंडक से काँप रही थी। तीन दिन से चूल्हा नहीं जगा था। लड़कों ने बाजरे की दो बाटियाँ और छोटी-सी लुटिया में, कंडों की आँच पर, कोदो का भात डाल रक्खा था। घर-भर को ओढ़ने के लिये दो फटी कथरियाँ और एक वैसी ही रज़ाई थी। पन्नू अब खाट पर रहते थे, इसलिये एक कथरी और रज़ाई उन्हें देनी पड़ी थी। दूसरी कथरी, चूँकि मुरगी का

अब बच्चों के धक्के-मुक्कों से अलहदा रहना जरूरी था, उसे दी गई थी। बाक़ी घर-भर रात की ठंड में कोदो के पयाल के ढेर में घुस जाता था। सग बाहर रख लेते थे, जिसमें दम न घुटे।

मायके और ससुराल की कंगाल मुरगी भी बीस साल की थी; लेकिन उसका यौवन उस फूल की तरह हो रहा था, जिसके दरख्त पर खाद-पानी की कमी से अधिक तुषार की मार पड़ी होती है। वह गदराई नहीं थी, बल्कि प्राकृतिक धक्कों से थोड़े ही में फूल-पटक और ठिठराकर रह गई थी। उसे नौ महीने का पेट था; स्तन-भार, नितंब-भार के बजाय शरीर में पेट-ही-पेट झलक रहा था।

मुरगी पन्नू का कष्ट काटने के लिये शीतलादेवी का 'बसंदर' डालने गई थी। दरवाज़े की नीम के नीचे पहुँचकर उसे ज़मीन में लेट जाना पड़ा। कई दिन से केवल मा के रक्त पर पलता गर्भ-शिशु बाहर के ताप और अंदर के संताप से चपेट खाकर व्याकुल हो उठा। मुरगी को ऐसा लगा, जैसे वह कोख फाड़कर निकल पड़ेगा। वह महामलिनवसना, चबूतरे के बल उढ़क गई। अस्ताचल के सूर्य का लाल तड़फा उस रक्त-हीन मुख पर भी लालिमा भरने की जड़ता कर रहा था। दर्द से भरी मुरगी ने सूर्य-बिंब की ओर देखकर अपने फटे अंचल को उठाया, फिर अपनी चूड़ियों को देखती आँखें मूँद लीं।

(३)

पन्नू ने रस्सियाँ ढीली करके तोड़ डाली थीं। वह मादरज़ाद

नंगे खाट पर बैठे थे। पुरवे के कई सहृदय, बूढ़ियों के साथ आँसू बहाकर, निश्चित अंत की प्रतीक्षा में थे। पन्नू ने “मुरगी, ओ मुरगी !” की फिर धुन लगा दी।

इस बार मुरगी ने संकोच छोड़ दिया। वह जाकर पन्नू की खाट के पास खड़ी हो गई—एकटक देखती प्रतिमा-सी। पन्नू ने बहुत साफ और मीठे गले से कहा—“देखो मुरगी, तुमने देखा नहीं। अब जो तुम हो, वही मैं हूँ। मैं इन्द्रियजित्, वासना-रहित, तुम्हारा सिद्ध मित्र होने का दावा रखता हूँ, तो फिर तुम मेरे गले लगकर अपना जन्म सफल क्यों नहीं कर लेती ?”

मुरगी चिल्लाकर पन्नू को लिपट गई।

पुरवे के बड़े-बूढ़े अब भी कहते हैं, दोनो का बड़ा सुखद अंत हुआ।

पाँखी

(१)

वसंत का अंत था । पलाश (ढाव) के जंगल के बीचोबीच एक सिरसे का बड़ा पेड़ था, जिसके साए में ढोर और चरवाहे दुपहरी बिता रहे थे । एक ओर मीठे पानी का सोता निकला था, दोनो किनारों पर झलिया और करोदे के कुंज । आठ से चौदह साल तक के कई लड़के थे । दो-तीन लड़कियाँ भी । चरवाहे, पत्तों की दोनियों में, सिंहर की फुनगी तोड़-तोड़कर गोदना गोदते, उनमें बकरी दुहते, और जब मीठा दही जम जाता, तो हिस्सा-बाँट करके खा जाते । दो किशोर चरवाहे दाने चाब रहे थे । एक बेभरे की पनेथी रोटी और खटाईदार करेला मुँह से काट-काटकर खा रहा था । एक और उसे धौल मारकर बिरा रहा था, उसी की बगल में सबसे छोटा, खड़ा राल घूँट-घूँटकर एक टुकड़ा माँग रहा था ।

पाँखी इन सबमें बड़ी है ; सत्रह साल की, पतली भौंह और बड़ी आँखवाली, गोरी-गोरी । सिरसे के सामने, पास ही, अमिलतास के नीचे, अरुसे के झुरमुट में चरवाहों ने टहनियाँ मोड़कर और सूखे पत्ते छाकर एक गुफा-सी बना दी है । जब

पाँखी की गोरू चराने की पारी खत्म हो जाती है, तो छुट्टी का समय वह इसी में बिताती है ।

कुछ टीस और तपकन के साथ शरीर की एक अजीब ऐंठन, आवाज का भारीपन, हृदय की थराहट और अपनी आँखों के नशे पर वह गुफा में बार-बार चौंकती रही, फिर उकताकर बाहर आई । सिरसे की भुकी डाल पर दोनो हाथ टेक, चमकीले दाँतों से एक पत्ती कुतरती, किसी के आने की राह देखने लगी । थोड़ी देर में उसका साथी, मित्र अथवा भावी पति जंगू सोते में पैर खलबलाकर इस आर आता दिखाई दिया । बीस-बाईस साल का बहुत खूबसूरत, चुटोला, कटीला जवान यह जंगू था; कस और बल से भरा हुआ ; कंधे पर खंता जिसके दोनो निरों पर शिकार लटका हुआ । भबरा कुत्ता सीना तानकर आगे-आगे चल रहा ।

बीस गज के फासले से हा जंगू के पुरुषत्व की बिजली पाँखी का धड़कता स्त्री-हृदय और फड़कती आँखें अपनी ओर घसीट ले गई । वह मेड़ फाँदकर पहले जंगू के कंधे से लग गई, फिर उसका बोझा खुद लेकर सिरसे के नीचे लिवा लाई । पाँखी की उँचाई जंगू की ठोड़ी तक थी ।

जंगू की लाई हुई सौगात पाँखी सिहा-सिहाकर देखने लगी— दो चौगड़े (खरहे), दो लोमड़ियाँ और पाँच-छ गोहें थीं । एक काला साँप भी ।

“दादू आया, चिज्जी लाया !” की पुकार नालों और टीलों में

गूँज उठी। उन पासी, चमार और नटों के लड़कों ने चारो ओर से दौड़-दौड़कर पाँखी और जंगू को घेर लिया। कोई पाँखी की ओढ़नी खींच रहा था, कोई जंगू के पैर में चिमट रहा था। दोनों ने किसी को पुचकार कर, किसी का सिर सहलाकर और किसी को गोद में लेकर राजी किया। कुछ लड़के सूखी पत्तियाँ और तिनके लाए। एक दौड़कर धूनी बाबा के यहाँ से अध-परचा कंडा उठा लाया। जंगू ने दोनों खरहों का पेट चीरकर साफ कर दिया, फिर पाँखी ने उन्हें भूनकर बालकों की रुचि का बना दिया। ढाख के पत्तों पर पाँखी ने अपनी ओढ़नी के खूँट से नमक-मिर्च गोलकर थोड़ा-थोड़ा रख दिया। ज़रा देर में अपना-अपना हिस्सा चट करके लड़के सोते से पानी पी आए। एक लड़का और गोरा-सा ब्राह्मण का था, अब तक बकेलू कूटकर पगही भाँज रहा था, पास आकर जंगू से बोला—“दादू, मुझे मांस क्यों नहीं खाना चाहिए?” पाँखी ने एक पका खरबूजा सिरसे के खोखल में छिपा रक्खा था लाकर, उसे दे दिया, और प्यार कर लिया।

लौटती दुपहरी, लड़के खा पीकर ढोंगों के साथ जंगल में छिटक गए। जंगू ने पाँखी की ओर देखा। आज उसने अपने काले, घुँघराले और लंबे बालों में कड़वा तेल डालकर उन्हें सींग की कंधी से झँझा था। बालकों की छेड़ में पट्टियाँ न पार सकी थी। पीछे, ओढ़नी के बाहर, कमर पर होकर एड़ी के सिरे

को छूते हुए, सिरसे की धूप-छाँह में वे काले की केंचल-से चमक रहे थे। पाँखी ने बड़ी हिम्मत करके जंगू की आँखों में देखना चाहा ; पर अब नितांत एकांत में वह भड़भड़ा उठी, पसीना आ गया। पेड़ की आड़ में जाकर अपनी ब्यानेवाली काली भैंस को सहलाने लगी। जंगू भी पीछे-पीछे गया, और अपने भबरा की बहादुरी बघारने लगा, कहा—‘पाँखी, उसने बीस हाथ की छलाँग मारकर आज इस मँगला-गोद को दबोच लिया!’ बार खाली न गया। किसी विशेष रस की हिलोरों में पाँखी नए नाविक-सी व्याकुल हो रही थी। जंगू की झूठ ने उसे साँस दे दिया। पाँखी ने बिगड़कर, जैसे ऐसे प्रसंगों पर लोग कहा करते हैं, जंगू का मुक्काबला करके कहा—‘हूँ ऊँ, भबरा तो बड़े बाघ की भी न करनेवाली बात करने लगा!’ उसे जंगू की आँखों में देखने का मौका मिला ही था कि हवा का एक झोंका आ गया। एक ढेर-भर सिरसे के फूल दोनों पर बरस बड़े। जंगू मुस्करा दिया।

पाँखी ने जंगू से शिकार के बारे में पूछा। लोमड़ियों को चौधरी काका के घर और गाहों को दुलिया के लड़कों को देने को कहा। जंगू ने हाँ कर दी।

गोधूलि में चरवाहों को उनके घरों के ठीक रास्ते पर छोड़कर जंगू और पाँखी नटपुरवा की ओर रवाना हुए ; आगे जंगू, पीछे पाँखी। थोड़ा ही चले थे कि सोतियों पर पाँखी की भैंस पड़िया ब्या गई। वह मारे खुशी के पागल हो उठी, यद्यपि

जंगू के सब कपड़े लीचर (लैहआ) की चोट बचाने में खराब गए ।

खबर पाकर बुद्ध काका (पाँखी के बाप) आए और पाँखी की खुशी में शरीक हुए । थोड़ी देर भैंस ने बच्चे को चाटा, वह खड़खड़ाकर उठने फिर चलने लगा । बुद्ध काका और जंगू आपस में बातें करने लगे । पाँखी के ब्याह की तिथि भी आज निश्चित कर दी गई । पाँखी के मनोविनोद का इस समय पूरा सामान था । उसने पड़िया को चुमकारकर भैंस के थन में लगाया । वह पन्हाई खड़ी थी । बच्चे को भैंस चाटने लगी । बस, बात-की-बात में पाँच मेर पिउसी उसने एक पतीली में गार ली । सब कुछ देखकर, हँसकर बुद्ध ने अपनी नटों की बोली में कहा, जिसका अर्थ होता था, “पाँखी की लड़काई अब तक न गई ।”

मुँह-अँधियाले सब नटपुरवा को चले गए ।

(२)

इस नटपुरवा को आज से पचास वर्ष पूर्व माखनपुर के पच्चा चौधरी (रैदास) ने, अपनी परती ज़मीन और बंजर में, इस खयाल से आबाद कराया था कि नौतोड़ ज़मीन कहीं लग पड़ी, तो सोना बरसा देगी । साथ ही इन नटों में से, जो एक असें से जरायम पेशा करार दिए जाते थे, आठ-दस की पुलिस में निगरानी होती थी । अगर सँभल गए तो बड़े साहब से कह सुनकर रजिस्टर से नाम कटा दिया

जायगा। मगर उनकी यह आशा फलवती न हो सकी। नटों ने अपने बाप-दादों का पेशा—स्यार, लोमड़ी, गोह और साँप का शिकार करना, किसी मोटे महाजन को उजाले-अँधेरे में पाकर दबा बैठना, भैंसें पालकर दूध पीना और डंड पेलना—किसी तरह न छोड़ा। पुलिस के नाकों दम है। ये इतने सरकश हैं कि दिन-दहाड़े जो चाहते हैं, कर गुजरते हैं। एक हिसाब से अब यहाँ इन नटों का ही राज्य है, यद्यपि ये लोग अब भी सिरकी के निरपाल से अस्थायी घर बनाकर रहते हैं। दीवारों के घर में रहने से इनका देवता अप्रसन्न हो जाता है।

जंगल के तीन तरफ़, कुछ फासले पर, दस-दस, बीस-बीस घरों के पुरवे बसे हुए हैं, जिनमें अधिकतर पासी, चमार और दां-चार कलाबाज नटों के घर हैं, जो सोलह आने अपने को इन्हीं महावतों (नटों) के भरोसे समझते हैं। गरीबों के लड़के अपने ढोर इसी जंगल का लाते हैं। किसानों की औरतें इन नटों की शराफ़त से स्वच्छंद जंगल में घूम-घूमकर अपनी खेती-बारी और धंधे किया करती हैं। नट बड़े लुटेरे हैं; लेकिन बहुत गरीबपरवर। उत्तर की ओर जंगल पहाड़ी तलहटी में मिल गया है। पुलिस-स्टेशन यहाँ से सात कोस और सबसे करीब का रेलवे-स्टेशन सत्रह मील है।

पाँखी पुरवे के चौधरी नटों में सरताज, बुद्धू काका की गोद ली हुई लड़की है, जिन्होंने आजन्म गरीबों की सेवा को सामने रखकर काम किया है। साठ साल के अविवाहित,

शरीर अंगारा-सा जलता है। बिना समझाकर बताए कोई यह नहीं विश्वास कर सकता कि यह शख्स सात बार जेल जा चुका है; दुख-सुख में समान, सदा प्रसन्न-मुख।

जंगू के मा-बाप छुटपन ही में मर गए थे। इसे भी इन्हीं ने पाल-पोसकर इतना बड़ा किया है। इस लड़के पर नटपुरवा-भर को बड़ा नाज है; उठती रेख, इक्कीस-बाईस साल का जवान; बड़ा सीधा और बहादुर। इसकी कुश्ती मशहूर हो चुकी है। गत वर्ष जग्गा पहलवान को, जो खेमराज जाट का भतीजा है और कुश्ती के फ़न में जिसे ज़िला-भर मान गया है, पाँचपीरों के मेले में इसने इस बुरी तरह पछाड़ा कि मियाँ के उस्तादों के छक्के छूट गए। छोटे जुवाड़ा महाजनों का तो दिवाला पिट गया। पाँच-पाँच पट के भाव में हजारों रुपया पिट।

इस साल पाँखी और जंगू का ब्याह होना निश्चय हुआ है। मैंगनी और पुछनी पारसाल ही हो चुकी थी। कन्या और वर दोनों पक्षों के सर्वेसर्वा बुद्धू काका ही हैं। सुना है, इस काम में पहाड़ प्रदेश और भाँभर तक की बिरादरी इकट्ठी होगी।



करीब चार घड़ी रात बीत चुकी थी। बुद्धू काका के पैर में कोई पुरानी चोट उखड़ आई थी, जिसमें जगू सुआर की चरबी मल रहा था और पाँखी दोनों के पंखा झल रही थी। काका सो गए। थोड़ी दूर पर खुले आँगन में बैठकर जंगू और

पाँखी हँसने-बतलाने लगे । कुछ धूप की-सी लकड़ियाँ जल रही थीं, जिनसे उजाला हो रहा था ।

जंगू ने खश होकर कहा—“पाँखी, आज मुझे बड़ा अच्छा लगा । सब-के-सब तुम्हें काकी और भौजी कह-कहकर कैसे और कितना चिढ़ाते थे । मैंने तुम्हारा सबरेवाला वह लंबा-मा घूँघट नीम की आड़ से देख लिया था ।”

पाँखी ने आकुल होकर उत्तर दिया—“तो तुमने मेरा नई बहू का नाटक पूरा-का-पूरा देख लिया ?”

“जरूर ! पीपल पुरवावाले रामू के साथ तुम्हारा गँठ-बंधन भी तो हो रहा था ।” जंगू ने चिढ़ाकर कहा । इस चोरी के पकड़ जाने पर पाँखी अपनी किशोरों की दुनिया का स्वप्न देखकर बोल उठी—“तुम न थे, इसलिये रामू ‘गुम’ बना था ।”

जंगू ने कहा—“और वह हरग्या का चण्डुआ ? तुम्हारा मुँह गोलकर कुछ गिला रहा था ?”

“कहती तो हूँ, इस पखवारे में सात दफे मेरा ब्याह किया गया है । चंटू मेरा देवर बना था, रुकनी ननैद और फुलवासी सास । वह रामू तो अपनी मा की हँसली मुझ दूल्हन को चढ़ावे में देने को चुरा लाया था ।”

जंगू और पाँखी की शिक्षा-दीक्षा में बुद्धू काका की बहुत बड़ी छाप थी । दोनो बड़े दबंग, साथ ही बड़े दयालु थे । जंगली गाँवों के गरीब किसानों के बच्चे अपनी माताओं को छोड़कर ढोर चराने, लकड़ी-कंडी

चुनने, बकेलू खोदने, खेत में काम करने या बाप को पानी देने जंगल को आते, तो पाँखी बनदेवी-सी सबको सब जगह मिलती। शिक्षित दुनिया से दूर होने का कारण उसके जीवन में कोई बनाव-सिगार या तकल्लुफ न था। जहाँ तक हो पाता, वह अपनी जवानी का अपव्यय न करती। किसी की टोपी, किसी की लँगोटी, किसी की गुड़िया और किसी की फटी फतुही वह हर समय बनाया करती। हर एक बच्चे का कुछ-न-कुछ तकाजा उस पर अवश्य रहता। पाँखी जब तेरह साल की थी, तो नटों के एक तीन महीने के बच्चे की मा को भालू ने मार डाला। दयालु बुद्धू काका बड़े दुखी हुए; परंतु पाँखी ने उनका दुख बँटा लिया। इसने बच्चे को पालने का बीड़ा उठाया और पाल दिया। वह अब तक जीवित है, और बुद्धू काका की आँख की पुतली हाँ रहा है। बड़ी गुड़िया-सी गोद में लेकर रुई के फाहे में जब यह उसे बकरी का दूध होशियारी से पिलाती, तो पुरबे की बड़ी-बूढ़ी औरतें इसकी बलाएँ लेकर अपनी आँखों में नमक-मिर्च डालने को कहतीं।

आज जगू तो इन कंगाल-कुमारों भर का दादू है। वह बड़े-से-बड़े दरखत पर चढ़कर, टहनी झटककर बच्चों को पके गूलर और जामुन खिलाता है, और दिन-भर उसे इनकी रखवाली ही करते बीतता है। जरूरत से जब कभी जंगल या पहाड़ की ओर उसे दो-चार दिन के लिये जाना पड़ता है, तो वापसी पर एक अपराधी की तरह वह हर एक बच्चे के पास

जाता है, और अपनी गौरहाजिरी के लिये माफ़ी माँगता है। बच्चे उसे पाकर जी जाते हैं।

जब रात भीगो, जंगू और पाँखी दोनो बुद्धू काका के करीब, एक उनके बिस्तरे के इम ओर और दूसरा दूसरी ओर सोया।

लोही लग रही थी। अकस्मात् घर के गश्त करनेवाले कुत्ते, भूबरा के नेतृत्व में, बड़े ज़ोरों से भूँक उठे। पाँखी भैंसों का चारा देखने उठी थी। पास ही दूसरे नट का घर था। पिछवाड़े गोबड़ौर में बटिहा के पीछे इमे किसी की आहट जान पड़ी, तो उधर ही बढ़ी; पर किसी ने फुसफुसाकर पुकारा—“शीरीं ! शीरीं !” शीरीं पाँखी के चाचा की बड़ी सुंदर, एक साल इसमे छोटी लड़की थी। उसने पाँखी से दो-तीन दिन हुए कहा था, आशिकअली हवलदार, जो उन दिनों इन नटों की नेकचलनी के जिम्मेदार थे, और जिसको साबित करने के लिये कभी-कभी वह पुरवा-भर की हाजिरी दिन में चार-चार दफ़े लेते थे, उसके पीछे बुरी तरह महीने-भर स पड़े हुए थे। खयाल आते हो पाँखी उबल पड़ी। उसने डपटकर पूछा—
“कौन है ?”

टार्च की रोशनी पाँखी के मुँह पर डालकर और पहचान जाने पर उसे गुल करके आगे बढ़ते हुए हवलदार आशिकअली ने कहा—“अख्खाह, आप हैं देवीजी ! मुआफ़ करेंगी मुझे। हम नाचीज़ों की हिम्मत आपके रुख़े-अनवर की ओर देखने की कहाँ हो सकती है ? वह तो रक्तीबों के लिये मखसूस है।”

साथ में एक कांस्टेबल और था। उसके मुँह से ताड़ी की बदबू आती थी।

पाँखी ने कड़ककर आशिक-अली से भाग जाने को कहा; लेकिन उन पर कमबखती सवार हो चुकी थी। आगे बढ़कर एक बहुत बेहूदा गाली उन्होंने पाँखी को दी, जिसका छीटा जंगू पर भी आया। जंगू और बुद्धू काका भी जागकर मौके पर आ चुके थे। पाँखी तिलमिलाकर रह गई। मियाँ आशिक-अली ने जंगू को सामने देखा, तो उनकी कैफियत हुई 'कम-ताकत, गुस्सा ज्यादा'-वालों की-सी। रात को चौधरी के यहाँ दावत में अद्धा-भर कच्ची भट्टी के महुवे का ठर्रा जमा चुके थे; लेकिन आधी रात के तमाशबीनों ने और न माना। दो बोतल खजूर की बामी ताड़ी कुचले के बघार में बुझी हुई भी पीनी पड़ी। वह अपने सिर पर पैर रखकर कुछ और खुराकत बकना ही चाहते थे कि जंगू उन्हें छाप बैठा। बात-की-बात में उसके एक हाथ में सिपाही साहब की मूछ थी, और दूसरा गर्दन नाप रहा था। खैरियत हुई कि हवलदार साहब को मिर्गी का दौरा बहुत दिनों से आ रहा था। इस वक्त भी आ गया, जिससे मार खाने से बच गए। वह आप-से-आप पेटकुइयाँ पड़े मिट्टी खुरच रहे थे; मुँह से फेना निकल रहा था। बुद्धू काका ने कई कोशिशें कीं, पर उन्हें होश न आया। अंत में पुरानी पनही उलटकर सुँघाने से फायदा हुआ।

हवलदार साहब का चाल-चलन उस दिन से बहुत सँभल गया ।

(३)

जंगल में मंगल हो रहा है । आज पाँखी और जंगू का ब्याह है । दोनो पक्षों के मालिक बुद्धू काका इधर से उधर इंतज़ाम में दोड़-फिर रहे हैं । बड़ी तैयारियाँ हैं । जंगू और पाँखी के मरे हुए मा-बापों के हृदय में अपना हृदय मिलाकर बुद्धू काका पर आज सामान्य बाप से पँचगुनी खुशी का भूत सवार है । बड़ी दूर, भाँभर के उस पार, थारु देश की बिरादरी तक को हाँक पहुँचाई गई है । कई सुअर, सात खरसी बकरे, खर्च करने को माँल लिए गए हैं ; चीतल और पाढ़े शिकार में मिलेंगे, वह अलग से । कच्ची भट्टी से महुए और शीरे की से-बारा शराब दस गैलन अभी आनेवाली है । जंगल के इर्द-गिर्द के पुरवों के पासी और चमारों को भी बुद्धू काका ने नेवता भेजा है । ये लोग नटों के यहाँ सिर्फ पूड़ी और सुअर के गोشت में, बुद्धू काका के प्रेम के कारण, चोरी से शरीक हो जायँगे; दाल-भात में नहीं । चमार अपने को नटों से ऊँचा गिनते हैं ।

जंगू और पाँखी के प्रेम में पले हुए चरवाहों ने आज अध-पहरी कर दी है । नटपुरवा के टीलों पर शाम ही से दीवाली-सा मच रही है । जनवासे में जगह-जगह चर्बी के चिराग और एक मोम-बत्ती-सी जलनेवाली लकड़ी की मशालें जलाई गई

हैं। क्रिस्म-क्रिस्म के जलसे हो रहे हैं। कहीं कच्चे घड़े के नक्क़ारे पर बिरहे गाए जा रहे हैं, तो कहीं सूप बजा-बजाकर लहचारी उड़ रही है। रामू के मुँह का तबला और चंदू की अँगोछे की मउहर का रिहर्सल तो आज आठ दिन से हो रहा है।

जंगली रम्भो रिवाज भी अजीब हैं। ब्याह स्वयंवर-सा होता है। भाँवरें नहीं पड़ती। वर-वधू एक दूसरे के प्रति सद्-व्यवहार रखने की प्रतिज्ञा पंचों के बीच करते हैं। शाम ही से सब शृंगार उतारकर कन्या पीपल के वृक्ष के नीचे बिठलाई जाती है। वहीं दोनों पक्षों के आदमी अपनी श्रद्धा-नुसार कुछ-न-कुछ उपहार उपेक्षते हैं। बदले में कन्या के हाथ से उन्हें दो-दो मखाने की खीर के लड्डू मिलते हैं।

पाँखी की कितनी दुर्गति या सुगति हो रही है कुछ न कहिए। बड़े और छोटे सब चरवाहे उसे पूजने या शृंगार करने को एक टीले पर पकड़ ले गए हैं; वहीं पीपल का पेड़ है। हरी बेल और फूलों से, सिंहासन-सा, एक चबूतरा सजाया गया है। बंदनवार और झालरें दरखत के हरे गोदों में दूर तक लटकाई गई हैं। घर और कुटुंब की म्त्रियाँ भी यहीं जमा हुई हैं।

पाँखी का रूप वैसे ही क्या कम है, फिर भी इस समय का शृंगार तो सोने में सुगंध हो रहा है। उसके बड़े-बड़े रेशमी बाल खोलकर जगह-जगह उनमें रंग-बिरंगे फूलों के बटन काँटों से टाँक दिए गए हैं। लड़कों ने जुगनू पकड़कर बारीक

कपड़े के रंगीन टुकड़ों में बंद किए हैं, जो बिजली के आप-ही-आप जलने-बुझनेवाले बल्ब-से जान पड़ते हैं। कई एक पत्तों की पहुँचियों में जड़े हैं। सीक की नक-बेसर में एक ऐसा चमक रहा है, जैसे किसी मंदिर की देवी-मूर्ति की नथ का हीरा !

बीच-बीच में ग्वाँग भी होते जाते हैं। एक चरवाहा नकली दूल्हा बनकर कन्या को छलने आता है ; पर वह (कन्या) कुछ गुप्त प्रश्न, दोनों की किसी प्राचीन स्मृति के विषय में, करती है, जिसका उत्तर वह नहीं दे पाता। कन्या उसे पर-पति कहती है, और वह जालसाजी में पकड़ा जाता है। सब-के-सब उस पर टूट पड़ते हैं। उसका मुँह काला करके बे-धर्म कहकर निकाल दिया जाता है।

दूल्हे के पक्ष में भी बड़ी चहल-पहल है। आधे चरवाहे उस ओर हैं। बरातियों की सवारी भैसों पर निकलेगी। वर का भूरा भैंसा सबसे बड़ा और शानदार होगा। उसके गले में बेलें की माला होगी, और सींगों पर दिए जलते होंगे। अगवानी और वर-परिछन के बाद वर कन्या के समीप ले जाया जायगा। कुछ अनुनय-विनय के पश्चात् वह उससे अपनी अर्द्धांगिनी बनने की प्रार्थना करेगा। तब कन्या अपने पैर का अँगूठा वर के मस्तक में छुला देगी, जिसका मतलब होगा, उसने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया है। फिर दोनों पंचों में आवेंगे, जहाँ शपथ और प्रतिज्ञाएँ होंगी।

रात-भर तरह-तरह के आमोद-प्रमोद में सब जागते रहे।

बरात आई, दरवाजे का चार हुआ, विवाह की रस्में अदा हुईं, और पाँवड़े डाले गए। अंत में इस शुभ कार्य की सांगता में कुमारियों ने वर-वधू पर धान की खीलों उछालकर गुलाल बरसाया। सबसे पीछे पाँखी की भावजें और हमजोलियाँ नव-दंपति को फूल-बंगला ले गईं। वहाँ के व्यवहार करके, दोनों को एकांत में छोड़कर सब अपने अपने घर बिदा हो गईं।

(४)

आशिकअली से चख-चख हो जान के कई महीने पीछे तक जगू को क्रिस्म-क्रिस्म की परेशानियाँ उठानी पड़ीं। जितना ही पुलिस दबाती थी, जगू सरकश होता था। यहाँ तक कि एक दिन बुद्धू काका की सलाह से पाँखी को साथ लेकर वह उत्तर घने जंगल की ओर बढ़ गया। वह धंधारी-वन के डाकुओं के गिरोह में मिलकर थोड़े ही दिनों में एक बहुत बड़ा डाकू हो गया। उसी के साथ पाँखी के बारे में तो अजीब क्रिस्से सुनने में आने लगे। सुना गया, वह भी जंगू के साथ मरदाने लिबास में डाका डालने जाती थी।

थोड़े दिनों तक दोनों ने बड़ी आफत मचा दी। कई बार दोनों की हुलिया जारी हुई और वारंट निकले। कई मुकामों पर घेर भी लिए गए; लेकिन ऐन मौके पर बेलाग निकल गए। अंत में सरकारी सी० आई० डी० के फंदे में फँसे ही। कार्तिकी पूर्णमासी की रात को शिवशेखर के मेले में दोनों पुलिस के हाथ गिरफ्तार हो गए, बड़ी

परेशानी और आफत मचने के बाद । चढ़ाई में कई आदमी सखत घायल हुए । जंगू मंदिर के उस पार कमंद फेककर निकल ही गया था; मगर खैरियत हुई, रस्सी टूट जाने से उसके हाथ में काँच का टुकड़ा घुस गया, जिससे वह जखमी होकर नीचे आ गया । दिमाग में चोट आ जाने से बेहोश पड़ा था; लेकिन जब तक उसके हाथ-पैर बेड़ी और हथकड़ियों में खूब जकड़ न लिए गए, सामने लोग छ मरी बंदूकें छतियाए खड़े रहे । पाँखी घोड़ी पर थी । कहते हैं पहले हजूम को रौदती हुई एक तीर-सी वह जंगल की ओर निकल गई थी; लेकिन मुत्तबिर को दो हजार का इनाम बढ़ा था । जंगू को फँसा हुआ जानकर उसने खुद आकर कप्तान साहब को आत्मसमर्पण कर दिया ।



पाँखी और जंगू दोनों पर राजद्रोह और डाके के कई-कई जुर्म थे । बुद्धू काका ने मुकदमों की पैरवी में एड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया । अपनी कुल जायदाद साफ करके वकील-बैरिस्टरों को खिला दी । करीब डेढ़ साल में सबसे ऊँचे इजलास का हुक्म सुनने के बाद बुद्धू काका दो ही तीन दिन और जी सकें । उनका शहर की आव-हवा हितकर न थी; पर अपने बच्चों को छुड़ाने की कोशिश उन्हें जिले में रहकर ही करनी पड़ती थी ।

दफा की रू से पाँखी को पाँच साल की सादी कैद और जंगू को सोलह साल काले पानी की सजा भुगतने का

हुकम हो ही गया । पाँखी देश में रक्खी गई, जंगू विदेश भेज दिया गया ।

(५)

पाँखी को सज़ा पाँच साल की हुई थी; परंतु वह इस मियाद के अंदर ही छोड़ दी गई, दो साल और करीब सात महीने उसने जेल काटी । बात यह थी कि वह बचपन ही से बड़ी स्वस्थचित्त और तर्कपूर्ण भावुक थी । जंगू की अर्द्धांगिनी होकर उसने अपना तन-मन और धन सब कुछ उसे दे डाला था, अतः उसके अनुकूल ही अपना आचरण बना लिया था । जब जंगू दानी हुआ, वह दानी की स्त्री, और जब वह डाकू हुआ, तो वह डाकू की शक्ति । यह मूल-मंत्र उसे कभी किसी ने सिखाया-समझाया न था, उसकी जाति का यह जौहर था, जो उसकी नस-नम में समाया था ।

जंगू का साथ छूट जाने से पाँखी को ऐसा मालूम होने लगा, जैसे उसकी काम करने की शक्ति किसी ने छीन ली हो । जेल में पहले चार-छ दिन तक तो वह बिलकुल उद्देश्य-हीन, सूनी-सी—जैसे लोहे की पुतली कूक (चाभी) दे देने से हाथ-पैर मारने लगती है—लोगों के कहने से काम करती थी । उसकी चपलता और प्रबलता, जो जंगल में जंगू के साथ थी, जाती रही । जेल की औरतें उसे बड़ा प्यार करने लगीं । थोड़े दिनों में कुमारी बटी, जेलर की लड़की, से पाँखी का परिचय हो गया, और चार-पाँच महीने में वह इसकी मित्र हो गई । दोस्ती

इस प्रकार हुई—जेल कंपाउंड के अंदर एक प्लाट में मुल्जिम सब्जी निरा रहे थे। मिस बर्टी यहाँ कभी-कभी फव्वारे पर बैठकर किताब पढ़ा करती थीं। इस वक्त भी थी। पास ही कैदियों का गुसलखाना था। पाँखी तसला माँजने और अपना सिर मलने गई थी ; बाल खोलकर झुकी हुई पैप से पानी ले रही थी। इतने में मर्दानी जेल का एक आवा-सा वार्डर चुपके-चुपके टीन की दीवार से सटकर आया—यह महीने-भर से पाँखी के पीछे पागल था—और पीछे से उसकी बगल में हाथ डालकर और उसके वक्ष पर ले जाकर अपने प्रमाद को और भी प्रज्वलित करना चाहता। पाँखी अपने दोनो हाथों का जाँता कसकर, डूब मारकर, बैठ गई। थोड़ी देर तक आप (वाडर साहब) खूब फटफटाए-फड़फड़ाए, मगर जब देखा, हाथ कौलादी शिकंजे में चरमरा रहा है, तो आँसू बहाकर सिमटते और बररते हुए, खीस निपोड़कर माफ़ी के ख्वास्तगार हुए। पाँखी ने तीन बार मा कहलाकर हाथ ठीला कर दिया, उधर देखा भी नहीं। आप भीगे चूहे की तरह पसीने-पसाने भग गए।

उस वक़्त गुसलखाने के इर्द-गिर्द बड़ा सन्नाटा था, औरतें अपने-अपने काम में लगी थीं ; सिर्फ पाँखी को मासिक धर्म होने के कारण छुट्टी थी। उसके रौद्र रूप धारण करने में कुछ खटक हुई, तो मिस साहब गुसलखाने की दीवार के पास गई, और एक सूरख से अंदर देखकर पहले चीखना भी चाहता ;

लेकिन एक अद्भुत दृश्य देखकर उसके आगे का रहस्य जानने को ललचा गई, जिससे खामोश, दुबककर खड़ी रहीं। जब पाँखी एक मिनट से भी कम में अपनी सामान्य अवस्था को प्राप्त कर नहाने में मग्न हो गई, तो मिस बर्टी इस रहस्य को रहस्य ही रखकर अपने स्थान पर आकर पढ़ने लगी।

पाँखी और मिस बर्टी का उस वक्त, तक सामान्य परिचय था। वह नहाकर जब इधर से निकली, तो मुस्किराहट में इनका अभिवादन करती हुई अपने बैरक को चला गई; बड़ी प्रसन्न और शांत; जैसे कोई अघटित घटना ही न घटी हो। मिस बर्टी ला पढ़ती थीं, उन्हें आश्चर्य हुआ।

तीसरे-चौथे दिन सबेरे वही वार्डर स्त्रियों की जेल में जल-पान के लिये चने और गुड़ लाया था। पाँखी खाने की मुंतजिम थी। वह निर्द्वेष भाव से उससे कह रही थी—“भाई, साथ-ही-साथ थोड़ा नमक-मिच भी लिए आया करो।” उसके शब्दों में एक बहन की-सी गूँज थी। वार्डर की आँखें उसकी ओर न होती थीं।

कुमारी बर्टी क्षमा की मूर्ति पाँखी को देखकर दंग रह गई; एकांत में ले जाकर उन्होंने कहा—“वार्डर का दुर्व्यवहार उन्होंने अपनी आँखों देखा था, फिर भी पाँखी ने उसे क्षमा कर दिया, और उसके काले कारनामे को किसी पर प्रकट न होने दिया। उन्होंने पाँखी से वार्डर पर केस तक चलाने को कहा, और खुद गवाह बनने को तैयार हुई।

पाँखी मुस्किराकर कुमारी बर्टी का हाथ अपनी ओर घसीटकर कहने लगी — “बहन, हम युवतियों और युवकों से गलतियाँ हो ही जाती हैं। वह अब किसी बहन के प्रति अन्याय न करेगा। हम किसी भाई अथवा बहन के व्यक्तित्व से कभी घृणा नहीं कर सकतीं। ऐसा करने से वह नष्ट हो जायगा, फिर सुधार किसका होगा ? हम केवल उसके दुष्कर्मों से नफ़रत कर सकती हैं, और उन्हीं का मुकाबला कर सकती हैं। मिस बर्टी सब कुछ अवाक् होकर सुनती रहीं।

कुमारी बर्टी ने पाँखी के गुण अपने बाप जेलर से बतलाए। वह बहुत प्रसन्न हुए। थोड़े दिनों में पाँखी उनकी भी कृपापात्र बन गई। वह उस पर बड़ा विश्वास करने लगे। पाँखी को जंगू ने हिंदी बड़ी सुंदर पढ़ा दी थी। मिस बर्टी उसे कुछ अँगरेज़ी भी पढ़ाने लगीं। वह पाँखी को अपनी मोटर में चोरी से अपने बँगले लिवा लातीं, यहाँ घंटों उसके साथ रहतीं। जेलर साहब ऐंग्लो-इंडियन थे, उनकी स्त्री देवी-सी थीं। कुछ ही दिनों में पाँखी अपने सद्गुणों से उनके हृदय में घुस गई। उसने उनको कई देसी खाने बनाना सिखाया। पाँखी के बतलाए पराठे और प्याज़ी पकौड़ियों की सराहना साहब बहुत दिन तक करते रहे।

कुमारी बर्टी अविवाहित थीं। एम्० ए० करके हाल ही में विश्वविद्यालय से निकली थीं, और पी-एच्० डी० की तैयारी में थीं। विवाह भी होनेवाला था। तीन-चार सज्जन कोर्टशिप के

दौरान में थे ; लेकिन अभी यह नहीं कहा जा सकता था कि कुमारी बर्टी किसकी सहर्धामिणी होंगी । अपन इस प्रकार के मित्रों में वह जॉन और जेम्स, दो युवकों को बराबर प्यार करती थीं । इस कारण पूरे साल-भर तक वह दानों में से किसी को भी स्पष्ट शब्दों में बचन न दे सकीं कि वह उसके साथ विवाह कर लेंगी । इस विषय में वह इतनी दुखी थीं कि आत्महत्या तक कर लेनेवाली थीं । वह सोचतीं—दोनों उनके पति हो नहीं सकते, और एक को अपनाकर दूसरा ठुकराया कैसे जा सकता है, जब दोनों उनके हृदय-निधि हैं ।

पाँखी के मुख से जंगू के प्रति उसके प्रेमालाप की बातें बर्टी को बड़ी अच्छी लगतीं । वह उसे एकांत में ले जातीं, और जंगू की याद दिला-दिताकर उसे रुलातीं, और अपनी छाती में लगाकर खुद भी उसको सांत्वना देकर और मुँह चूम-चूमकर व्याकुल होतीं । पाँखी हर बार अपना हृदय एक मित्र के सामने खोल देती । बर्टी देखतीं, अपने प्रियतम के प्रति पाँखी के आँसू बड़ी गहराई से निकलते हैं । वह जब रोककर शांत हो जाती है, तो एक वृत्त-ऐसा पूरा हो जाता है ; फिर कभी जब उद्वेग उठेगा, वह रोवेगी और रोककर शांत हो जायगी । मगर मिस बर्टी देखतीं, उनको रोते-ही-रोते राहत मिलती है । सिसकने में उन्हें एक सुख मिलता है, जो उसी वक्त तक रहता है, जब तक वह सिसका करती है । उनके

हृदय का रोना समाप्त ही न होता था । वह थककर जब उसे बंद कर देती, तो फिर रोने को जी चाहने लगता ।

पाँखी के जेल से छूटने में दो दिन थे । मिस बर्टी उसकी कोठरी में आकर उसके गले से लिपट गई, कहा—“पाँखी, तुम मेरी जीवन-रक्षा किए जा रही हो । तुम इतनी पढ़ी-लिखी नहीं हो, पर तुम्हारा स्त्री-हृदय सुंदर-से-सुंदर है । तुम्हारे जीवन और सत्संग से मैं यह समझ सकी कि ‘प्रेम अंधा होता है’ यह मसला गलत है । तुम्हारा उस दिन का वह तीर ‘प्रेम की दृष्टि बड़ी दिव्य होती है, वह सोते में भी जागता है’ मेरे हृदय को भेद गया । बिल्कुल सही है, मैं अब जॉन से शादी कर लूँगी ; क्योंकि पहलेपहल हृदय की मद-भरी आँखें उसी पर खुली थीं । अब मैं जेम्स को भी खुलकर प्यार कर सकूँगी । वह स्वस्थ युवा है, मेरा निर्णय सुनकर बड़ा संतुष्ट हुआ, यहाँ तक कि हमारी वेडिंग केक अब वह अपने हाथ से जॉन के निमित्त काटेगा ।” पाँखी ने एक संतोष की हँसी हँस दी ।

जेलर साहब के आदमी पाँखी को नटपुरवा तक पहुँचा गए ।

(६)

पाँखी को नटपुरवा दोबारा आए आज दस वर्ष हो चुके हैं । बुद्धू काका के साथ-साथ वहाँ के और भी बहुत दृश्य नष्ट हो चुके हैं । पुरवा के टीले और दरखत ही बाकी रह गए हैं । बुद्धू काका का आतंक यहाँ के बड़ों-बड़ों तक छाया हुआ था ।

उनके न रहते ही जमींदार और पुलिस, दोनों ने नटों पर जुल्म करना शुरू कर दिया। परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में नट अपना डेरा-डंडा उठाकर इधर-उधर भाग-बिड़र गए। जंगू के जेल चले जाने से चरवाहे भी अनाथ-से हो गए थे। उनमें अब पहले का-सा जोश और दम न था। पटवारी और चौकीदार की बेगार करते-करते उनके नाकों दम था। वे ग्वड़े देखा करते, और उनकी गाँँ सरकारी फौज के लिये जबरदस्ती दुह ली जाती। रामू और चंदू ने चौधरी के सिपाहियों से पिट कर एक दिन रोकर पाँखी से कहा—“उनके काका (बुद्धू) या दादू (जंगू) उस दिन होते, तो उनकी वह दुर्गति कभी न होती।”

पाँखी का जीवन बहुत कुछ जंगल ही में बीता था। दूसरे, उचित रीति से उसका कोई पुरसाँहाल भी न था, इसलिये उसने जेल से आकर जंगल ही में रहना पसंद किया। चश्मे के पास एक टीले की आड़ में रामू वगैरह ने उसे फूस और पत्तों की मढ़ैया छा दी थी, उसकी मरम्मत, जब जरूरत होती, चरवाहे कर देते, या वह खुद अपने हाथ कर लिया करती थी। खाने को हर मौसम में कुछ-न-कुछ जंगली फल, जड़ें और शाक मिल ही जाते थे। फिर भी जो चरवाहा खुशी से अपने टुकड़े में से उसे कुछ दे देता, तो वह बड़ी खुशी से खा लिया करती थी।

पाँखी और जंगू जिन दिनों पढ़े-लिखा के बीच में थे, जंगू को

एक दिन भोज दिया गया था। उसमें उसका फोटो भी लिया गया था, और जिसकी एक कॉपी पाँखी ने अपने देखने को ले ली थी। जंगू का परिचय देते समय उसने मिस बर्टी को उसे दिखाया, तो उन्होंने रख लिया। और तीन-चार दिन में उसे एक सोने के लॉकेट में मढ़ाकर पाँखी का भेंट में दिया। तभी से वह उन धागे में डालकर गले में पहने रहती है।

चरवाहे जंगल में सिरुँ दिन-भर रहा करते थे। जब एकांत हो जाता, वह जंगू की तस्वीर की ओर बड़ी देर तक देखा करती। जंगू के साथ जो कुछ क्रीड़ाएँ उसने कर रखी थीं, उनकी सुखद स्मृति ही में रात-दिन बीत जाते थे।

इस बार शुरू-शुरू में जेल से छूटकर जब पाँखी जंगल को आई थी, तो कुछ ऐसी बाधाएँ आ गई थीं, जो नई अवस्था-वालों को ऐसी स्थिति में आ जाया करती हैं। एक दिन एक मनिहारिन (चूड़ीफरोश) ठीक दोपहर का पाँखी की भोपड़ी के पास से गुजरी, और पाँखी से चूड़ी पहनने को पूछा। पाँखी ने उत्तर में 'न' कहकर उसे चिन्म पीने को गड्डे में आग निकाल दी। मनिहारिन दम खींच-खींच और खाँस-खाँसकर उसकी अवस्था और एकांत-वास पर तरस खाने लगी, फिर बहुत कुछ भूमिका बाँधकर उसने पाँखी से मिसिरपुर के नंबर-दार वाजपेया के नाती की कॉफ़ियत, जो कुछ पाँखी के बारे में उसको हुई है, कही। पाँखी ने सब बातें बड़े धीरज से सुनीं, और उसके इस प्रस्ताव—'वैकुण्ठपुर के आर्य समाज-मंदिर

में यदि वह अपनी शुद्धि कराकर दिदू हो जाय, तो नबरदार के घर खुल्लमखुल्ला रहे'—का भी तिगस्कार नहीं किया। यद्यपि मनिहारिन ने दो-तीन मिसालें देकर पाँखी को आगा-पीछा सुभाया, फिर भी पाँखी ने उसके हाथ जोड़कर उसे वापस कर दिया। क्रसवे के भौलवी साहब तो खवाहमखवाह पाँखी की मोपड़ी के पास पाँच बार उसका कंकू दूर करने ही के लिये आए। कहते थे, अगर वह कलमा पढ़ ले, तो हाजी साहब का लड़का उससे निकाह करके बल-बल जायगा।

जंगू जिस देस में था, उसने लिखा था, वहाँ सोना बड़ा सस्ता है, और उसने रोजगार करके भली-खासी रकम इकट्ठी कर ली है, उसकी नेकचलनी और सच्ची बहादुरी पर सरकार ने यह भी हुक्म दे दिया है कि अपनी जायदाद अपने देश जाते वक्त, वह साथ ले जा सकेगा। महीने में एक बार जंगू की चिट्ठी पाँखी के पास आती थी।

पाँखी को जब चौबीसवाँ साल लगा, तो एक अघटित घटना घटी। उसको बड़े जोरों से शीतला का प्रकोप हुआ। कई रोज़ बुखार आने के बाद इतने जोर का माहा उभरा और इस क्रूर भार हुई कि मारे बदबू के दस गज पर भी कोई बिना नाक द्वारा खड़ा नहीं हो सकता था। रामू और चंटू ने बड़ा परिश्रम किया, और चरवाहे भी मदद में रहे, तब कहीं उसकी जान बची। लेकिन एक आँख और उसका मुँह कुछ खराब गया। आँख में फूल पड़ गया, और मुँह खुतरा हो गया।

बीमारी से उठने पर पाँखी में बड़ा परिवर्तन हो गया। उसने इतने दिनों में इरादा करके अपना मुँह शीशे में कभी न देखा था। अब उसने एक चरवाहे से शीशा मँगवाया है, और दिन में कई बार अपना मुँह उसमें देखती है। उसकी आदत में एक खास तब्दीली हुई है। जंगू की तस्वीर रोज नियम-पूर्वक वह देखा करती थी, परंतु अब उसने उसे देखना ही छोड़ दिया है। सिर्फ गले में पहने रहती या अपनी चोली में छिपाए रहती है। जब से चलने-फिरने लगी है, वह दिन में कई बार चश्मे में अपना मुँह धोती, उसे रगड़कर साफ़ करती, और खराब आँख में किसी जंगली जड़ी का अर्क लगाकर दिन में दस बार आईना देखती है। जंगू की तस्वीर का सामना होते ही उसका बुरा हाल हो जाता है। चोली से निकालकर तस्वीर को जैसे वह चूमने लगती है, उसकी दुर्गति होने लगती है। वह काँपने लगती, रोती, और पसीने-पसीने हो जाती है। फिर एक ईसाई के क्रॉस की तरह उतनी ही श्रद्धा से वह उस लॉकेट को छाती में चपटा लेती है, और एक अपराधी की तरह किसी प्राचीन स्मृति में डूब जाती है। जंगू की चिट्ठी आने में जब देरी होती है, तो वह, जैसे पहले होती थी, व्याकुल होने लगती है। लेकिन जैसे ही रामू या चट्टू लाकर उसे देता है, वह भयभीत-सी होकर पहले उसे अपनी कुर्ती में छिपा लेती है। अपने को बहुत कुछ सँभालने के बाद कहीं वह उसे अधूरी ही पढ़ पाती है। वह अपने को जंगू की कोई बहुत

प्यारी चीज बिगाड़ देने की अपराधिनी समझती है, और उस क्षति की जैसे अब किसी तरह पूर्ति ही नहीं हो सकती। वह कभी-कभी स्वप्न देखती है, जैसे जंगू आया और कहता है, पाँखी, तुम एक बार मुझे अपना पहला रूप दिखा देतीं। वह जगकर सिर पटककर जान खोने लगती।

(७)

जंगू सजा भुगतकर आया। चौधरी की पूरी जायदाद उसने मोल ले ली थी। नटपुरवा बरबाद हो चुका था। एक और पुरवा आबाद कराने का उमका विचार हुआ, जो उसी सिरसे के इर्द-गिर्द, जहाँ बच्चे गौड़ी लगाया करते थे, तय हुआ। जिस अमिलतास के नीचे पाँखी के खेलने की झोपड़ी थी, वह जंगू के नए मकान की आँगनाई में हुआ।

तीन-चार वर्ष पहले पाँखी ने जंगू को लिखा था, जब वह घर आवेगा, तो वह रामू के साथ आकर उससे शहर ही में मिल जायगी। लेकिन जब वह दिन आया, तब वह घने जंगल में उत्तर की ओर न-जाने कहाँ बाघ-सिंहों के बीच घुस गई। उसने अपने प्यारे चरवाहों का भी साथ छोड़ दिया।

जंगू को भी न-जाने क्या हो गया है। छूटकर आने के छ महीने पहले से उसके पाँखी के प्रति व्यवहारों में बड़ा अंतर आ गया है। उसने अपने छूटने की सूचना भी पाँखी को न दी। चरवाहों से उसने पाँखी के इस बार रहने के मुकाम को पूछ

लेया था। कई बार उसने चश्मे की ओर जाने का विचार किया, मगर न जा सका। एक दिन डरते-डरते गया भी, तो तुरंत घबराकर भागा। उसे जान पड़ा, जैसे पाँखी उस स्थान से निकलकर अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से उसकी कोई बहुत बड़ी कमी देख लेगी, यद्यपि उसे उस भोपड़ी का एक-एक तिनका बड़ा प्यारा लगता था।

×

×

×

एक वर्ष बाद। संध्या हो रही थी। सूर्य की किरणें क्षीण हो जाने से वह पूर्ण-चंद्र-सा दिख रहा था। जंगू आज फिर बड़ी हिम्मत करके पाँखी की भोपड़ी के स्मारक के करीब जैसे ही पहुँचा, सचमुच छिपुले की आड़ से कोई भड़भड़ाकर निकला। जंगू ने आँखें फाड़कर देखा, तो पाँखी ही थी। अब वह भी मुँह फेरकर भागा। लेकिन राम की मर्जी, दोनो एक ही ओर लपके, तो आपस में लड़कर गिर पड़े। हताश होकर पाँखी ने जंगू के गले लिपटकर कहा—“नहीं-नहीं, मैं तुम्हें अपना मुँह न दिखाऊँगी। मेरी आँख.....।” जंगू ने पाँखी की ठोड़ी पकड़कर ऊपर उठा दिया, देखा, मुँह में चेचक के दाग थे; लेकिन उसे वह जँचा पहले से भी प्यारा। पाँखी का मुँह देखकर उसके हृदय में एक ठेस-सी लगी।

फिर उसे हिम्मत-सी हो गई। अपना दाहना हाथ, जो मोढ़े से रबड़ का था, उसने निकालकर पाँखी के सामने डाल दिया। वह चीखकर बेहोश हो गई।

अँधियाला हो गया था, बेहोश पाँखी को उसने बाएँ हाथ से गोद में उठा लिया, और जल्दी-जल्दी अपने अमिलतास की अँगनाईवाले घर की ओर चला ।

क ख ग घ

(१)

हुलासपुर एक मजरा था; हदवस्त मौज्जा चंदनपुर था, जिसमें इस प्रांत में रहनेवाले सब प्रकार के हिंदू बसे थे। पेशेगर मुसलमान भी थे। गाँव-भर का मुख्य धंधा खेती-किसानी था। हल-बल, खेत-खलियान, कर्ज फाकाकशी, इन लोगों की एक-सी थी। महाजन की जालसाजी, स्वतंत्रता की हलकी-सी साँस में जमींदार की दखलंदाजी, दरिद्रता के कारण धार्मिक अनुष्ठानों (कथा-वार्ता, मीलाद इत्यादि) में उदासीनता, जिससे पंडित और मुल्लाओं की असहानुभूति, इन्हें छूत-अछूत, हिंदू-मुसलमान में विशेष अंतर सोचने का बहुत कम मौका देती थी। हिंदू और मुसलमान चार-पाँच महाजन भी थे। चौकीदार, मुखिया, पटवारी और जमींदार के अहलकार और इनका आचरण एक तरह का था। सब-के-सब धार्मिकता में कट्टर, अपनी बात का निर्वाह करनेवाले, साफ-सुथरे भले-मानुस होने का दावा रखते थे। सबके रोज घी-दूध, दो-दो तरकारियाँ और बाजार के दिन गोश्त पकता था। ब्राह्मणों में एक नौबजान सिर्ग महराज थे। गरीब और अमीर दोनों के लिये यह एक पहेली हो रहे थे। औरत मर गई थी, दूसरा

ब्याह न किया था; घर एक गरीब किसान को बग़ार बनाने के लिये दे दिया था। खहर की दो लुंगियाँ और दो कुर्ते, किसानों का काम आधी मज़दूरी पर करके, बनवा लिया करते थे। भीगा चना या सत्तू का भोजन; रात किसी के दरवाज़े, उसके दुखोदर्द में शरीक होकर कट जाती थी। सदा प्रसन्न रहा करते थे। नाम बड़ा सुंदर था, लेकिन भद्रगण इन्हें सिरा (पागल) कहा करते थे। यहाँ यह मशहूर था कि बहुत पढ़ लेने और देश-विदेश घूमने से इनका दिमाग़ फिर गया था।

बरसाती शाम होने को थी। लाला (पटवारी) के दरवाज़े छोटे-बड़े सब जमा हो रहे थे; लड़की की शादी थी। क़ब-जवार में जो लोग शरीफ़, लाला से बराबरी का दर्जा रखनेवाले थे, उन्हें नवेद दिया गया था; किसानों से लड़की के ब्याह की मदद; जो हॉनी ही चाहिए, ज्यादातर ख़ूबसूरत, बाक़ी बदसूरत अल्फ़ाज़ में माँगी गई थी। चमार जलाने की लकड़ी चोर रहे थे, अहीर घी-दूध ला रहे थे, काछिनें सब्ज़ी वग़ैरह।

लाला लोगों की बैठक ठहरी। कबाब आए, कूज़ आए, चूज़े आए, साथ-ही-साथ नक़सुर और लड़खड़ाती ज़बान भी आ गई। ऐन मौक़े पर मदरहुआ के मुंशीजी भी आ गए। 'आइए, बस आप की ही कमी थी', कहकर मेज़मान और मेहमान ग़म ग़लत करने लगे।

पटवारी ने घूँट के ऊपर गज़क चाटते हुए, शर्मिली निगाहों से मुखिया को देखकर (इनके सामने एक बार न पीने की

प्रतिज्ञा की थी) कहा—“बड़े के दादा, मैं अब न पीता हूँ, न और कभी पियूँगा। क्या करूँ, जब तक छुन्नी (लड़की) पार नहीं लग जाती, बड़ी फिक्र रहती है। यह कुछ राहत देती है,” कहकर कुज्जी साफ़ कर दी।

मुखिया पीते न थे, लेकिन गाढ़ी दूधिया छान चुके थे, सरूर में भरकर कहा—“बड़े गुरू हो छोटे लाला, देखी जायगी, करा देना दफा इकमठ की काररवाई, भैया (ज़िलेदार) को उलटी-सीधी सुभा-बुभाकर।” कोहला (भुना हुआ .खुश्क गोश्त) की सोंधी .खुशबू पर ‘घट’ करके इन्होंने राल घूँट ली. लेकिन तंगकू थूकने की मुद्रा में हो गए।

कुछ देहाती, साल के खर्चे से काट-कपटकर अगर सौ-दो-सौ रुपया भी ज़मीन में गाड़ पाते हैं, तो अपने को बहुत बड़ा आदमी समझने लगते हैं, उर्दू बूँकते हैं। मुखिया साहब, ‘जनाब’ को ‘ज़नाब’, ‘फल’ को ‘कल’ और ‘सुबह’ को ‘शुबह’ कहते थे। ज़िलेदार ने भोंके में कहा—“ओबें लालाँ साँलाँ, मँराँ क्यों जाँताँ हैं, ‘छुन्नी’ काँ जे वँरँ मेराँ रहाँ। बेंटाँ, पूँरें ढाँई सौँ अँभी गिनें देताँ हूँ।” आप हकले भी थे। कुछ पी लेने पर पीनेवालों की सखावत बढ़ी। ठर्रे की .खुशबू पर चमार भी ललच रहे थे। एक लुहार और दो पासियों के, अपने को शौक्रीन समझनेवाले, लौंडे भी किवाड़ की आड़ में लसे खड़े थे, सबको एक-एक कुज्जा दारू और छटी हुई बोटियाँ दे दी गईं।

मदरसे के मुंशीजी कल शहर से सिनेमा देख आए थे। गिर्दे पर मुँह के बल पड़े गा रहे थे, 'पिए जा, गाए जा, ओ बेकरार दिल ।'

जिलेदार के इज्जारबंद में गिरह लग गई, खोल न सके, तोड़ दिया। तो चुन्नट ढीली हो गई। लिहाजा नंगे हो गए; खड़े-खड़े कर्म-विशेष कर रहे थे, और मुंशीजी से कह रहे थे—“आँयँने शाँयँदै ज्याँदाँ पी लीं।”

पटवारी साहब को उलटी हाँ रही थी। इतने में घर से नाइन आई। कहा, ललाइन बुला रहा हूँ। असली शराबी और शराब नहीं, जो कै के बाद कुल्ली करे, और करने दे। इनका वर्णन कर रस-भंग करना अपना ध्येय नहीं। यहाँ तो कहने के लिये यह कहना है कि अंदर के हुक्म पर लाला साहब उलटी टोपी लगाकर तौलिए की जगह धोती से मुँह पोंछते हुए ड्योढ़ी को चने, लेकिन चौंधियाकर घुड़साल में घुस पड़े, जहाँ घोड़ी की दुलत्ती खाने से बाल-बाल बचे। खैर, नाइन की लड़की अंचल से अपना आधा मुँह ढके, मुस्किराती, लेकिन डरती-डरती उन्हें ड्योढ़ी टिका ले गई। रास्ते में लाला साहब की त्रिधवा भावज खड़ी थीं। 'लल्ला, मैं हूँ, अजी मैं हूँ!' उनके चिल्लाने पर भी पटवारी साहब ऊपर लुढ़क ही तो पड़े। जौजे पटवारी साहब इन्हें पकड़ कोठरी में घसीट ले गई, वहाँ एक खरखटी खाट पर धसक दिया। क्रोध के पीछे जब करुणा आई, तो बड़ी देर तक

अपनी छुन्न। और शराब बनाने-बेचनेवालों के भाग्य को कोसती रही।

(२)

ज़िलाबोर्ड ने इस परगने में अनिवार्य शिक्षा बतौर नमूना इस ख़याल से पास की थी कि कामयाबी हासिल होने पर दरिद्र देश के सामने यह अपना आदर्श उपस्थित कर देगी। धनिकों और शिक्षितों को अशिक्षितों और दरिद्रियों के प्रति, इस उलट-फेर के युग में पूर्ण सहानुभूति दिखाने का मौका मिला। ज़िलाबोर्ड के चेयरमैन साहब राष्ट्रीय, नरम दल के थे। कांग्रेस उग्र राजनीतिक संस्था है, असहयोग का पालन केवल दस-बीस उच्च विचार के मनुष्य ही कर सकते हैं, इस कारण उससे सहयोग न कर सकते थे। उनका क्षेत्र दलितोद्धार और शिक्षा थी।

मदरहुआ का मदरसा चार गाँवों के बीच ऊसर के एक टीले पर, चूँकि अभी अस्थायी था, छप्परोँ और कच्ची दीवारों से घेर-घारकर कायम किया गया था। एक मिडिल पास, ट्रेनिंग फ़ेल, नौउम्र मुंशी और क़स्बाती स्कूलों का तब्दील किया हुआ फ़र्नीचर, इस साल इसके लिये यही काफ़ी था। जिन ज़मींदार साहब की परती ज़मीन में यह पुण्य अनुष्ठान हो रहा था, उन्हें भी चेयरमैन साहब के शुभ विचारों और अपनी रिआया का बड़ा क़लक़ था। अमीर-ग़रीब में बंधुत्व बनाए रखना, वे कहा करते, बड़ा ज़रूरी

था। एक दिन रियासत के बड़े महत्तों के यहाँ ठाकुर हाथी चढ़कर, अभी हाल ही में लड़की के ब्याह का नेवता करने गए थे। वहाँ भी किसानों की भरी पंचायत में कहा—“भाइयो, हम सब एक ही जात और बिरादरी के हैं। एक मा-बाप से चाहे भाई होते हैं—एक राजा का मुसाहब, दूसरा सरकारी मुलाजिम, तीसरा देस-परदेस करनेवाला व्यापारी और चौथा हल की मुठिया पकड़नेवाला किसान। सबको अपने-अपने हिसाब से रहना पड़ता है, सब एक-दूसरे से प्रेम-भाव रखते हैं।”

लेकिन इस अनिवार्य शिक्षा-प्रणाली का प्रभाव किसानों के एक बड़े खित्ते पर कुछ का कुछ पड़ रहा था। शिक्षा के पक्ष में केवल वे थोड़े थे, जिनके पास कुटकुटी थी, अथवा जिनका जीवन एक कोरे किसान का जीवन न था। देहातियों में शिक्षा के पक्ष और विपक्ष में खेत, खलियान, पनघट, सब कहीं गरमागरम बहसें हुआ करती थीं।

दलजीत महाराज महाजन अपनी असाढ़ी की उगाहिये लिखाने जा रहे थे (हस्ताक्षर की जगह आप अगूठे क निशान बनाया करते थे)। गौड़ी पर चरवाहों को अटई-डंड खेलते देखकर सिरा महाराज ने, उन्हें (बच्चों को) एव भौंड़ी गाली देकर कहा—“ये राकस पढ़ना-लिखना पसंद करेंगे!”

सुखदीन मिसिर पास ही गोबड़ौर में कंडे पाथ रहे थे

औरत मर गई थी। बहू पर्दे में रहती थी। बारह बरस का बियाहा बेटा खेत-खलियान में हाथ बँटा लेता था, लेकिन दो महीने से रोज़ सुबह लाजिमी तालीमवाले पकड़ ले जाते थे। बकरियों को आधे दाम पर क्रस्साब ले गया, पालो का खेत काटते प्यासों मर जाते। चिढ़कर सिरा के पहले ही भरे घड़े की तरह भभक पड़े—“अब तो महाजनों के पुरखे पानी पा गए? वही राकस आते होंगे। बस, सबको धर ले जायँगे। भगवान् सत्यानास करे इन मदरसावालों का। कंडा, सीला, बछिया-पड़िया को हरेरी, लौंडों के बिना सब चौपट हुआ जा रहा है। गाय-भैंस काँजीहौस जाकर नीलाम हो रहे हैं। समन और जुर्माने का डर न होता, तो मैं सुंदरवा के गले में गला बाँधकर बैठ रहता।”

दलजीत महाराज ने घोड़ी पर चढ़े-चढ़े सुखदीन के जनखेपन को इशारा करते हुए शिक्षा के समर्थन में अपने अँगूठे की छाप पर खेद प्रकट करना चाहा। लेकिन सिरा महाराज ने उन्हें बीच ही में टोककर समझा दिया, यह बात बिल्कुल सच है, अन्न में प्राण बसते हैं। परंतु ज्वर के रोगी को वह विष हो जाता है।

देहातियों का ‘भेड़िया-धसान’ मशहूर है। उनके इतना दिमाग नहीं होता कि दिल को दाब सकें। गौड़ी पर अपने विषय की समालोचना होते देख भीड़ इकट्ठी हो गई, और हृदय के गोले छूटने लगे। चरन दारोगा ने दलजीत के पक्ष में कहा—

“अकबर कमला कर गहे बरसत कंचन नीर ;

माथे छत्र दरिद्र के बूँद न परे शरीर ।

थाने के दारोगाजी हमारी ही बिरादरी के नाई हैं । यह सब अँगरेजी और ए० बे० तक पढ़ लेने ही का प्रताप है कि ‘कुरिया तोड़ धौरहरा’ खड़ा कर दिया ; बड़े बड़े बाँभन उनको नमस्कार करते हैं । लड़के का जनेऊ इस ठाट से किया कि लोगों की छाती पर कोदो दल दिए ।” अँगनू अहीर ने सुखदीन की ओर से उत्तर देते हुए कहा—“दादा, जब मढ़ते बनती है, तो बजती ख़ूब है । महाजनों की कैफ़ियत इस वक्त, उस नाई की है, जिसके खेत में ख़ूब धान हुआ था, और घर में लगनी भैंसें थीं, गाँव की ख़ैर-सलाह पूछने पर हमेशा ज़मींदार से कहा करता, सरकार, लोग ख़ूब दूध-भात खाते हैं । तुम्हारे घर चार काम करनेवाले हैं, इसलिये राह-राह नहीं चलते, कलिकवा को करधनी और कड़े पहनाते हो, और चंदिर को चहारम पास कराकर चकलेदारी में भेजोगे ।” भींगुर ने भँकारा—“हमारा भिखुआ खुंदी को जब तक घास लाया, दस सेर दूध देती रही, जब से वह मदरसा पढ़ने जाता है, वह खुटा गई, चिंगने भूखों मरने लगे ।” सुखदीन ने एक और रद्दा कसा, गोबर-भरे हाथ की उँगली गाल पर रख, सर्द आह खींचकर कहा—“जाके गोड़ न जाय बिवाई ; सो का जाने पीर पराई ।”

दलजीत महाराज खिसियाकर भँकारा की ओर चल दिए ।

चरन दारोगा अपना-सा मुँह लेकर अपना काम करने लगे । भगाना भगतिन नीम के नीचे निबकौरी बटोर रही थीं, बड़बड़ा रही थीं—“दइया, वह टिकनी का चंदुआ, कल्ह भइया को चीसा डालने में मदरसा न जा सका, तो दाढ़ीजारों ने बालक की लोथ उठा दी !”

बहस के प्रारंभ ही में सिरा महाराज चौंककर एक ओर चल दिए थे । टिकनी उन्हें अस्त-व्यस्त, दूर ही से, उन्हीं को खोजती दिखाई पड़ी थी । अब वह चंदुआ की पीठ में हल्दी-चूना लगाकर उसे सेंक रहे थे ।

(३)

आर्थिक दरिद्रता टिकनी का जन्मसिद्ध अधिकार था । चमार के मर जाने से मानसिक दरिद्रता ने भी उसमें अपना घर कर लिया । प्राकृतिक उपहास शायद अपनी जवानी में था । टिकनी की हुलिया से दरिद्रता अपने सर्वांग, संपूर्ण विक्रमित रूप पर नाज करने लगी थी । पूरे दिन का पेट, अंदरूनी बुखार, अब उसे और दुबली न कर सकता था । गर्भ की दशा में सहज शिथिलता को भूख की मार अब और चेतना-शून्यता के कारण क्या बढ़ा पाती । गाल पिचके, होंठ काले, रूखे बाल, सूखी आँखों का वर्णन यदि कोई सहृदय करता, तो यही कह पाता कि वह एक मानव-शरीर की संपत्ति का उपहास कर रहा था । उसका लहँगा इतना फट चुका था कि उसमें और फटने की ताब न थी । आधी

ओढ़नी की चंदुआ ने मदरसा जाने के पहले दिन लुंगी बना ली थी; आधी को जब वह सूखी, कानी खुली छाती की ओर खींचती, तो तुंबाकार, नीली नसों से भरा हुआ, मटमैला-पीला पेट सभ्यता और हयादारों से कुछ प्रश्न करता-सा दिखने लगता ।

टिकनी के मुख-दुख का समान साथी घर, इसी का-सा, इसकी ओर देख-देख, जैसे समझ-समझ, संसार की सारता और असारता पर हँसता-रोता था । उस पर भी, टिकनी के पति-संयोग के-से, परिस्थितियों के 'प्यार' बरस चुके थे ! अब प्राकृतिक मार पड़ रही थी । प्रचंड वायु के भोकों ने थप्पड़ों मार-मार जैसे छपनों का कलेजा छलनी कर दिया हो । हवा की मदद से, मँगरी टापर के अभाव में, बरसाती बूँदों ने लोनी लगी कमजोर दीवारों पर अपने बड़े कोड़े बरसाए थे । बछड़े के साथ नोम का दरवाजा भी चार रूपए पर महाजन बरसान के पहले 'आई-गर्ड' कर खोद ले गया था । वर्षा ने अपनी क्रीड़ा में कवहियों को गलाकर द्वार बंद कर देना चाहा था, लेकिन वे जैसे जिहन, अपनी चौकोर शक्ल से अर्द्ध-चंद्राकार भुरभुरी बन, जब चाहते, मा-बेटों को रास्ता दे देतीं ।

चंदू हिंदी के अलिरु दर्जे में, उर्दू के काफ़-जैसा लिखा, फटे टाट पर, बच्चों की आखिरवाली कतारों में बैठा था; दोनो पैर आगे को तने हुए, हाथ गिरे, सिर झुका । मुंशीजी स्कूल से दूर, एक दरखत के नीचे बीड़ो सुलगा रहे थे, और पटवारी

से, जो लोग चेचक का टीका न लगवाने की तरह बच्चों को स्कूल न भेजना जुर्म, अपनी बेवकूफी से नहीं समझ रहे हैं और मोटे हैं, उन पर काररवाई-जाब्ता कराकर समन निकलवाने को कह रहे थे।

निस्तेज चंदू पढ़ने में तेज न था; स्कूल केवल मार और कानून के भय से आता था। संस्कारों की सदियों की कमी नए, रोबीले मुंशीजी एक घंटे में पूरी करने का दावा रखते थे। लगातार पंद्रह दिन तक एक हजार बार कवर्ग के उच्चारण में चंदू ने 'ङ' को 'अंगा' कहा, लेकिन हठीले मुंशीजी अपने को यह समझने का मौका न देते कि इसका कारण क्या था।

मास्टर को दर्जे के बाहर देख लड़के हो-हल्ला मचा रहे थे; मुंशीजी दूर ही से उपाधि-विशेष का प्रयोग कर, उन्हें बीच-बीच में, चुप रहने को धमका रहे थे। बच्चों की खुले हृदय की चुलबुलाहट ने चंदू को भी देर तक चितित मुद्रा में रहने का मौका न दिया। एक ने इसकी चुटिया खींचकर कहा—“भई चंदू, सब खेल रहे हैं, तुम्हारा मुँह बनाकर बैठना अच्छा नहीं लगता।”

चंदू भी उठ खड़ा हुआ। सबके साथ मुस्किराने लगा। मुंशीजी लाला से सलाह करते दूर निकल गए थे। लड़के बाहर आकर छप्पर के नीचे खेलने लगे। हलकी फुहार पड़ रही थी। पश्चिम में आँधी का रुख था।

आज मंदरसे चलते वक्त टिकनी ने चंदू से टूटी-टूटी बातें

की थीं। उसने कहा था, उसके प्रसव-पीड़ा हो रही थी। और शायद उसी में उसका अंत भी हो जाय। कारण बताकर छुट्टी माँगने पर भी सुबह मुंशीजी ने कहा—“यह करिश्मये क्रुदरत है, जिस तरह सब पार-घाट लग जाती हैं, तेरी मा भी तुझे छोटा-सा मुन्ना खिलाने को देगी।” चंदू दुखी उक्त कारणों से था, परंतु अब हँसने-खेलने लगा यह सोचकर कि मा सच-मुच अच्छी हालत में मिलेगी; जैसा मुंशीजी ने कहा था, एक मुनुवा भी हो गया होगा। निराशा के बाद आशा कितनी सुखद होती है।

छुट्टी की घंटी हुई। चंदू ने अपने हिस्से का चना और गुड़ टिकनी के लिये रख छोड़ा था, उसे लेकर जल्द घर चलता हुआ। वह बारह वर्ष का था, लेकिन लकुटी लिए दीन-दुर्बल आठ बरस का जान पड़ता था। पानी खूब बरसकर बंद हो गया था।

×

×

×

हुलामपुर और मंदरहुआ पुरवा के बीच ढाख के जंगल में एक बरसाती नाला था। सुबह चंदू जब घर से चला था, और लड़कों के साथ की वजह स्कूल का चपरासी भी साथ था, उस वक्त, नाला सूखा था। अब दौंगरा गिर जाने से उसमें पानी बह रहा था; धार बहुत तेज थी। जब चंदू किनारे पहुँचा, हुलासपुर और चंदनपुर के लड़के बँधिया पर होकर नाला पार कर चुके थे। कुछ दूर के टीलों पर छूलों में छुई-

छुआवल खेल रहे थे। घर पहुँचने को उत्सुकता और उनका साथ करने की व्यग्रता में उसने समझा, नाला बहुत कम गहरा है और सब इसी सीधे रास्ते होकर निकल गए हैं। नाले में क्रदम रखते ही उसने देखा, लड़कों से कुछ पूछकर सिरा महाराज इसकी ओर बढ़े, फिर दौड़ पड़े। चंटू ने समझा, मा के मुन्ना हो गया, सिरा काका उससे जल्द चलने को कहने आ रहे हैं। वह पार जाने को आगे बढ़ा, लेकिन निर्दय नाले ने उसे बीच ही में निगल लिया। सिरा महाराज भी क्रोध में इस दानव से लड़कर उसे छीनने लगे, लेकिन थोड़ी देर के उखाड़-पछाड़ में वह इन्हें भी चट कर पचा गया।

(४)

टिकनी के बच्चा और सरसाम साथ ही हुआ। रात-भर वह घर के छप्पर और दीवार से पूछती रही—“चटुआ ‘क ख ग घ’ पढ़ने गया था, अब तक आया नहीं ?” सुबह वह दरवाजे तक घिसट आई। मृगे, सिकुड़े, मरे बच्चे के मुँह पर वह अपना सूखा स्तन रख दुलराकर कहती—“पी ले मेरे मुन्ना, चंटुआ ‘क ख ग घ’ पढ़ने गया है।” सड़े बच्चे को बैदरिया की तरह वह कई दिन तक छानी में चिपटाए हुए अपनी कड़वा से वायुमंडल को कोंचती रही—“तुमने देखा, चंटुआ ‘क ख ग घ’ पढ़ने गया है।”

टाई अचहूर

शहर के दक्खिन एक टीला था—बहुत गंदा, जा-बजा अरुसे और कटेरियाँ उगी हुईं। बीचोबीच एक बहुत बड़ा सेमर का पेड़, इधर-उधर बबूल और बेर। म्युनिसिपैलिटी ने यह जगह शहर-भर के फक्कीरों को दे रखी थी। जाड़ों के दिनों में लोग धूप खाने के लिये अपने आप यहीं सिमट आते थे। गर्मियों में टाउन-एरिया के एक नियम के अनुसार चपरासी सरे-शाम से ही सबको यहाँ रात काटने के लिये खदेड़ जाते थे। धीरे-धीरे इन फक्कीरों ने अपना एक उपनिवेश सा कायम कर लिया था। उनके ब्याह-शादा, पंचायत और खेल-तमाशे यहीं हुआ करते थे। इस हद में उनके अपने कानून और सामाजिक नियम बरते जाते थे। यहाँ बड़ा-छोटा, जाति और रंग-भेद का लोग नाम तक न ले सकते थे। अगर कोई नया कोढ़ी अपना जनेऊ दिखाकर जन्म से ब्राह्मण होने का दम भरता, तो पंच उसे कड़ा सजा देता। भजेमानसों की तरह बात-बात में यहाँ दया-शरम और शिष्टाचार को दुहाई नहीं दी जाती थी।

जाड़ों की सुबह थी। अपने अड़्डों और घोंसलों में फक्कीर और फक्कीरिनें निश्चित, सुविधा-जनक मुद्राओं में, सूर्य की किरणों का सुख ले रहे थे। कोई कोदो के पुआल अथवा सूखी

घास का तकिया बनाकर उस पर उढ़क रहा था। शवों को धारा के प्रवाह में फेर जानेवाले लोग कभी-कभी अच्छे गहे और कालीन नदी के किनारे छोड़ जाते थे। कुछ नवयुवक और नवयुवतियाँ इन्हीं पर एक जगह कुंडलाकार बैठे थे। बीच में टिकटियों के सूखे बाँस अरुसों के साथ जलाकर आँच की जा रही थी। लोग खूब खुल-खुलकर हँस और मजाक कर रहे थे। भूनकी का यार अपना सिर उसकी रान पर रखे लेटा था। भूनकी उसका मुँह लालच-भरी निगाह से देख रही थी। चमेली की आँख आ गई थी। उसका चहेता उसे गोद में लिए संक दे रहा था। भीखू मिठानी के जूँ मार रहा था। एक और समझदार मूसे की ओर मटक-मटक-कर अलाप रही था, 'मेरे दर्दे-दिल की दवा ही तुम्हीं हो !' फुल्लो बिगड़-बिगड़कर दर्दे-दिल की इस दवा पर उसे मारने दौड़ती थी। उसने एक बार गंभीर होकर कहा भी कि मूसे के दर्दे-दिल की दवा जो उसे समझने हैं, वह गलत है। और-और बातें जरूर रही हैं, लेकिन पंच-परमेसर को साखी करके परनी बनकर रहने के लिये उसने किसी और के दिल में जगह बना ली है। और, उसने यह बात पंद्रह दिन पहले मूसे को भी समझा दी है कि अब वह क्रायदे-क्रानून से उसकी नहीं हो सकती। साथ ही यह भी कि खामखाह के लिये वह 'मान-न-मान मैं तेरा मिहमान' की कहावत से औरों के सामने अपने को जलील न किया करे।

मूसे फुल्लो के मित्रों की ख़ुशामद में उनके कुल्हड़ों, टीन के डिब्बों और चरुओं में हाथ-मुँह धोने और कुस्ती करने का पानी भर रहा था, तड़के से अब तक वह बराबर कुछ-न-कुछ, किसी-न-किसी का, काम कर ही रहा था—सिर्फ दो बातों से, अन्वत् तो यह कि कँगलों के ब्याह-शादी में पंच बिरादर की हिमायत ही सबसे बड़ी बात होती है। दूसरे यह कि फुल्लो ने हँसते-हँसते एक दिन 'भरी जवानी माँझा ढीला' कहकर उसकी मर्दमी पर चुटकी ली थी। वह इस वक्त, यह दिखा देना चाहता था कि इस कड़ाके की ठंड में भी मूसे में जवानी की गर्मी भरी है, और वह दो आदमियों के बराबर काम कर रहा है। एक बात और भी थी। जिस दिन से उसने फुल्लो की आँख तिरछी देखी, उस दिन से उसने उसकी और उसके मित्रों की टहल-चिरौरी अधिक करना शुरू कर दी थी। उसका विश्वास था कि सेवा-पूजा से देवी-देवता दयालु हो जाते हैं। चमेली के एक दिन अशुभ सूचना देने पर भी उसने आह तो भरी थी, लेकिन बहुत ही आशा-पूर्ण शब्दों में यह भी कहा था—“चमेली, देव और पछुआ की सेवा-पूजा में लगा हूँ।”

जिस समय फुल्लो ने मूसे के मामले में अपना अंतिम फ़ैसला सुनाया था, वह झुनकी की बासी रोटी, आँच दिखाकर खाने के काबिल बना रहा था। फुल्लो की बात ने जैसे उसे ज़िंदा ही मार दिया, वह कटे रूख-सा रह गया, उसकी नस-नस झूठी पड़ गई। उसमें जितनी भी उमंगें, जोश और ताकत

थी, जैसे सब कुछ फुल्लो का दिया हुआ था। जब से जवान होने लगा था, फुल्लो के प्रति उसका अनुराग जग गया था, और उसे आशा हो गई थी कि वह उसकी होके रहेगी। सुंदर-से-सुंदर युवतियाँ भी उसे फुल्लो के समने कुछ न जँचती थीं। पहले, जब बीच शहर में भीख माँगने जाता था, सुंदर नौजवान औरतों को अपनी मस्तानी अदाओं के साथ देख उसका जी डावाँडोल होने लगता था। बजाय भीख माँगने के मेले के दिन वह रूप-राशियों को देख उनके बारे में न-जाने कितनी संभव-असंभव बातें गूँथने लगता था। कहीं किसी ऐसी की उसे लात ही लग जाती ! एक दफे बुरी तरह मारा न गया होता, तो बहुत बड़ा जुर्म कर डाला था।

लेकिन जब से फुल्लो ने उसे अपनी ओर मुँह उठाने की इजाजत दे दी थी, दुनिया-भर की परियाँ उसके ठेंगे पर थीं। अब जब कभी वह किसी बड़े आदमी की बहू-बेटी को देव-मंदिर के सामने मोटर से उतरते देखता, तो उपेक्षा से अपना मुँह फेर लेता। कहता—“मैं भी एक दिन अगर फुल्लो का हाथ पकड़ सका, तो इसी जगह उसके साथ आनंद से भीख माँगूँगा। तब देखना, एक तुम और एक हम।”

लेकिन इस वक्त, सब पर पानी फिर गया था। फुल्लो के आँखें फेर लेने से वह सर्द होकर जहाँ का तहाँ रह गया। फिर एक जोर की टंडी साँस खींचकर ज़मीन पर लेट गया। उसकी सूरत बड़ी डरावना हो गई, आँखें पथरा गईं।

भुनकी के, कैसा है, यह पूछने पर भी वह उसे जवाब न दे पाया था ।

फुल्लो बहुत घबरा गई । एक बार उसका जी चाहा कि वह मूसे के हृदय से लगकर उसे हरा कर दे, लेकिन फौरन् ही वह इस बात से शंकित भी हो गई कि वैसा करने से मूसा उसके गले का फंदा हो जायगा । यह वह न चाहती थी । उसे पसीना छूटने लगा । किसान की बात का कोई जवाब न देकर वह लंबे डग नाले की ओर चल दी ।

(२)

ईदू तकिया के बाबा का चेला था । ये लोग खानदानी फकीर थे, सामान्य फकीरों से अपने को ऊँचा गिनते थे । धनी और धर्मात्मा जब फकीरों का भोज करते थे, तो बाबाजी की चौखट-वालों को 'सीधा' और 'परोसा' सांगोपांग, औरों से अच्छा और अधिक दिया जाता था । बाबा गद्दीधर थे । शहर के करीब ही उनकी रियासत थी । अद्धा, बहली, लड़ी, मियाना, सब एक छोटे-मोटे जमींदार का-सा था । हर बीफे और सूक को बच्चों के फूँक डाली जाती थी । इससे एक अच्छी आमदनी हो जाती थी ।

यही ईदू था, जिसने मूसा को बोलने-जामनेवाला नहीं रक्खा था । दरगाह के मेले में उसकी बाज़ की-सी निगाह में फुल्लो आ गई थी । बस, उसी वक्त से वह उसका शिकार बन गई । तरह-तरह के घुमाव-फिराव और फरेब का जाल उसके दूत

बिछाने लगे। यहाँ तक कि महीने-भर में कंगाल मूसे की निधि छिन गई।

अवश्य फुल्लो मूसे को प्यार करती थी। बचपन से दोनो एक ही साथ भीख माँगते थे, एक-दूसरे के दिल को पहचानते थे, आर-धमार भी की थी, और दोनो एक-दूसरे की तरफ खिंचते जा रहे थे। निर्बाध गति से मूसे आगे बढ़ रहा था। निर्द्वंद्व वह अंत तक पहुँच सकता था, लेकिन ईदू ने बीच में आकर फुल्लो को ठीक जगह से हटा दिया। जिस समय से फुल्लो के दिल में आदमी के साथ उसकी दौलत और इज्जत का भी सवाल उठा, ईदू के मुकाबले मूसे का पल्ला बहुत ऊँचा उठ गया। मूसा कड़ता था, अगर फुल्लो कह दे, तो वह जामुन की फुनगी से कूद पड़े, उसने उसे अपने हृदय की रानी बनाकर रखा है !

चार दिन से मूसे ने कुछ खाया न था। भीख माँगने भी वह न जा सका था। पुलिया की आड़ में उसने अपना अड्डा बना रखा था। वहीं अन्यमनस्क लेटा था। उसके दिल में एक आग-सी सुलग उठी थी—फुल्लो ने उसे धोका दिया ! पिछले दिनों का एक-एक चित्र उसके मस्तिष्क में आकर नाच जाता। फुल्लो का उसने दमड़ी-दमड़ी जोड़कर एक मुँदरी गढ़ा दी थी। वह उसके पीने को पाना दो मोल चलकर ककड़ के कुएँ से लाता था।

फुल्लो को अंतिम बिदाई देते समय चमेली और मुनकी

ने मूसे के साथ वैसा सलूक न करने का बहुत समझाया, लेकिन वह मानी नहीं। वह इनकी आँखों से आँख न मिला सकी, फिर भी उसने वैसा किया ही। वह जानती थी, मूसे उसे हृद से ज़्यादा प्यार करता है; लेकिन सिवा प्यार के और वह कुछ नहीं कर सकता, यह उसकी मा ने उसे खूब समझा दिया था।

कँगलों में सिर्फ पंचों में खड़े होकर इकट्ठा कर लेने से ही ब्याह पक्का हो जाता है। ईदू का बाकायदा निकाह होगा—काज़ी आवेंगे, खुशबूदार खाने पकेंगे, आरायशें और आतिश-बाज़ियाँ छूटेंगी। शहर-भर के फ़कीरों में बड़ी खलबली थी। इसलिये नहीं कि फुल्लो को ईदू दिन-दहाड़े निकाल ले गया, चरचा इस बात का था कि फुल्लो का भाग्य कितना अधिक उदय हुआ—कहाँ एक बग़ैर जाने बाप की लड़की, कहाँ दो गाँव के ज़मींदार का चेला! एक अंधी फ़कीरनी ने, जिसके एक कानी बदसूरत लड़की थी, कहा—“ऐसा करने से ईदू के कुल में दाग लग गया!” लेकिन तुरंत ही जमात का रुख देखकर उसने यह भी कह दिया—“राजै सबै छाजे!”

(३)

मूसे ने शहर-भर के करीब-करीब सभी खास फ़कीरों से करियाद की। उसका दावा था कि सिर्फ सगाई न हुई थी—मँगनी और बैठकी उसकी फुल्लो के साथ, जैसी पंचों ने चाहा, कर दी गई थी। लिहाज़ा अब पंचों को अपने वचन का पालन करना चाहिए। लेकिन किसी ने उसकी कुछ न सुनी। सरपंच

ने चनों का फका मारते, हरी मिरच और नमक को कंकड़ी 'कट' में तोड़ते कहा—“बेटा मूसे, काली माई के मंदिर पर भीख माँगो, मिठाई-बताशे जो मिलें, उनका नाश्ता करो; आटा-दाल पकाकर खाओ; चार छ पैसे जो नक़द मिलते हैं, उन्हें ताड़ी और उसके साथवाले जशनों में उड़ा दिया करो। बस, यही हम लोगों का ज़िंदगी का लुत्फ है।”

फुल्लो की मा सरपंच को प्याज़ की चटनी और फक्कीरों के चौधरी को पान का टुकड़ा लगाकर दे गई।

चौधरी ने नास की चुटकी ख़त्म करके बड़े जोर से नाक छिड़कते हुए कहा—“भई, आजकल औरत का रखना हाथी पालने के बराबर है। मान लो, फुल्लो का ब्याह तुम्हारे साथ ज़बर-दस्ती करा ही दिया जाय, तो तुम रखोगे कहाँ? हम लोग कँगले, न घर, न द्वार, न एक जगह कहीं रहने का ठिकाना। वह अपने से ऊँचे घर तो चली गई, यह हमारे सबके लिये खुशी की बात है!”

जिस दिन ईदू का ताँगा फुल्लो की मा को भी लेने आया, उस दिन फुल्लो की मा की ठसक देखते ही बनती थी। आपसे आप उसकी नम-नस में गईसी भर गई थी। जिन टीन के डिब्बों को टूट जाने पर भी वह निधि की भाँति जुगोप थी, उन्हें फ़ोली के साथ कूड़ेख़ाने में फेंक दिया, चलते-चलते ग़ामखाह के लिये ताँगेवाले को एक फटकार बता दी, सिर्फ़ यह दिखाने को कि दमाद के माल पर उसका इतना अधिकार है। बराबरी के

फकीर मूसे पर फबतियाँ कसने थे। फुल्लो की मा को वह मा कहकर पुकारता था, लेकिन अब वह मुँह फुलाए रहती थी। चारो ओर से अपमानित होकर मूसे जहर का घूँट पी-पीकर रह जाता था।

×

निकाह के बाद फुल्लो दो-तीन बार शहर के बड़े बाज़ार में ईदू के साथ दिखाई दी। मूसे की निकाह पड़ते ही वह पीली पड़कर जमीन की ओर दखने लगी थी। ईदू फुल्लो को पूरा प्यार नहीं दे सका था। प्यार की एवज़ उसने उसे सोने के झुमके और रेशमी साड़ियाँ दे रखी थीं। ईदू के तीन चार रखेलियाँ भी थीं। सबसे पहले निकाह की औरत भी मौजूद थी। एक कसबिन थी, उसके साथ भी मुताअ करके थोड़े दिनों में फुल्लो के साथ ताँगे पर घुमाता था। सौतों से पहले फुल्लो मन-ही-मन कुढ़ती थी, लेकिन पति के सामने धीरे-धीरे मुँह खुलने पर अब वह उनसे खुलकर चिढ़ने लगी थी। बल्कि कसबिन का तो एक दिन उसने भोंटा भी घसीट लिया था। इस बात ने उसे ईदू के मन से और भी उतार दिया।

गर्मी की शाम थी। शहर से मिली देहात से मूसे भीख माँगकर वापस आ रहा था। खजूर के जंगल में उसे अकस्मात् फुल्लो मिल गई। वह उसके गले से लिपट कर माँफी माँगने लगी।

मूसे हक्का-बक्का रह गया। फुल्लो को बहुत दुबली और

पीड़ित देख वह उसे सहला-सहला और चूम-चूमकर रोने लगा। फुल्लो ने उसे बहुत समझाया कि ईदू और उसके साथी ताड़ी की दूकान में बेहोश पड़े थे, वह उसे अपने साथ मौक़ा देख कहीं भगा ले चले। लेकिन मूसे के पैरों में जैसे बेड़ियाँ भर दी गई हों, उसकी बुद्धि भी मारी गई थी, उसकी नस-नस खिंची जाती थी। वह इधर-उधर आँखें फाड़-फाड़कर देखता, लेकिन उसकी आँखों में अँधेरा छा रहा था। वह एक क्षण के लिये अपनी मोटी कलाई को तोड़-मरोड़ कर मूठी बाँधता, ईदू से बदला लेने की सोचकर। लेकिन साथ ही उसे डर इतना लगता कि पसीने-पसीने हो काँपने लगता। उसे रास्ता भूल गया। बहुत देर तक वह एक ऊसर में फुल्लो का कंधा पकड़े-पकड़े भटकता रहा। आखिर फुल्लो ने खुद ही उसे जंगल से बाहर किया, और शहर की राह आगे-आगे दिखाती चली। जब कभी फुल्लो मूसे से जल्दी भग चलने को कहती, उसका दिल धड़कने लगता, और उसके पैर सँद जाते। अपने पकड़े जाने और पिटने की कल्पना कर वह सिहर उठता था—जैसे ईदू और उसके साथी पकड़कर इस जंगल में उसे ज़िंदा ही गाड़ देंगे !

और ऐसा ही हुआ भी। औरत की ज्ञात फुल्लो इकले अपने वृत्ते कुछ न कर सकी। ईदू के आदमी मूसे की आपा-धापी में ही आ गए, और अपनी मदमस्ती में उसे खूब मार-कर भूसा किया—सिर्फ साँस छोड़ दी।

चीखती-चिल्लाती फुल्लो को उठा ले गए। असमर्थ मूसे अपने इस दुख के दुख को देखता रहा।

(४)

मूसे को कई दिन तक खून के क़ै-दस्त होते रहे। ईदू के आदमियों ने उसे अंदरूनी मार बहुत दी थी। दो महीने बाद फिर चलने-फिरने लायक हुआ। बीमारी में वह पड़े-पड़े सोचा करता, आखिर ईदू भी आदमी है और वे भी आदमी हैं, जो ईदू का साथ देते हैं, और खुशामद में उसी की-सी कहते हैं। मूसे राम-राम और अल्लाह-अल्लाह सिर्फ दूसरों से भीख लेने को कह दिया करता था। लेकिन आदमी की तरह-तरह की सूरतें तो हर समय उसके सामने आया करती थीं—सब-की-सब निर्दयता से भरी हुई। वह अपने लिये भी सोचता—एक मैं हूँ, भिखमंगा। इतने पर भी कल न मिली। हज़ारों की जायदाद और चार-चार औरतों को रखते हुए ईदू ने एक गरीब पर तरस न खाया। अपने ज़ोम में मुझ कँगले की हृदय-निधि छीन ली, और मुझे दिवा-दिखाकर अब उसकी दुर्गति कर रहा है। ऊबकर वह मेरे साथ भग आना चाहती थी, लेकिन ज़ालिम उसे तड़पती मछली-सी पकड़ ले गया।

टीले पर अपनी मा के घोंसले के सामने फुल्लो ने एक जमुनी का पेड़ लगा रखा था। फुल्लो के भग जाने पर मूसे उसे बड़ा प्यार करने लगा था, उसे सींचता, गाड़ता, कभी-कभी सहलाकर चूमता भी। आज उसने उसे जड़ से काट डाला।

एक भुजाली से, जिसे वह सुबह से बाढ़ रखकर तेज करने में जुटा था, पेड़ को उसने ज़रा-ज़रा 'छर' के फेंक दिया। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी — बुदबुदात हुए वह बिगड़ी हुई भुजाली की धार फिर दुरुस्त करने लगा। उसके चेहरे पर वह इतमीनान था, जो आदमी को उस समय होता है, जब वह एक उलझन सुलझाकर किसी एक निश्चय पर पहुँच जाता है। इसी भुजाली से आज मूसे ने पहले फुल्लो को मार डालना, फिर उभी रक्त-भरी को अपने हृदय में खोस लेना तय कर लिया था। फुल्लो की व्यथा अब उससे देखी न जाती थी। ईदू के बारे में उसे विश्वास हो गया था कि वह अब फुल्लो को छोड़कर नहीं, घुला-घुलाकर मार देना चाहता है।

शाम को भीख माँगने के बहाने वह तकिया जाकर अपने काम करने का मौका देख आया था। बाहर क छज्जे पर चढ़कर वह फुल्लो की खाट तक पहुँच सकेगा। ईदू और उसके साथी करीब ही लेंटे होंगे। लेकिन उसे तो निकर इतना ही मौका चाहिए कि वह फुल्लो के छुरा मारकर अपने भी मार ले। बस।

मार-काट की बातें मूसे एक हद तक ही सोच सकता था। ईदू और उसके साथियों को मारने की कल्पना वह उनकी गफलत में भी न कर सकता था। बचपन से ही वह निराशाओं की ठोकरें खाने को जी रहा था। वह दुनिया की दया और सहानुभूति पाकर ही अधम की तरह जी सकता था। संघर्ष न

उसके किए हो सकता था, न वह उसमें पड़ने की हिम्मत ही कर सकता था। फुल्लो को उसने प्यार किया था। उसकी दुर्दशा हो रही थी, जो उससे देखी न जाती थी। इस वक्त सबसे बड़ी बहादुरी जो वह कर सकता था, वह थी फुल्लो को मार डालने और साथ ही अपनी भी जान दे देने की।

x

x

x

मूमे जितना ही फुल्लो की खाट की ओर बढ़ता था, उसके पैर लड़खड़ाते और दिल धड़कता था। लेकिन फुल्लो और अपने को दुनिया में उठा देने की उसकी लालसा इतनी प्रबल थी कि बार-बार वह दाँत पीसकर काँपते हाथ से गिरते छुरे को संभाल लेता था। सोते हुए ईदू और उसके साथियों पर निगाह पड़ते ही वह एक बार भय से चीख देना चाहता। लेकिन तुरत ही आँखें भीचकर वह लड़खड़ाता फुल्लो के पास पहुँच गया। एक बार उसने आहट ली, सब बेसुध सो रहे थे। अपना काम पूरा होते देख मूमे की और भी साँस फूलने लगी। छुरा तमतमाकर उसने क्षण-भर तय किया कि पहले फुल्लो की छाती में मारकर फिर अपने भोंक लेगा। फुल्लो की ओढ़नी सरका दी, लेकिन छुरे का हाथ पहले अपने ही मारकर ढेर हो गया।

चिंतादास की गोली

(१)

दिहात में प्रायः भक्तिवादी ही हूआ करते हैं। चमार जब 'डॉगर' 'निकाता' रहता है, तब वह कितना ही साफ़ क्यों न हो—भलेमानुसों को उसे देखते ही घिन छूटती है। लेकिन वही, जब कंठीबंद भगत हो जाता है, तो भले लोग भी उसे तुकारकर नहीं पुकारते; बल्कि उसके शुद्ध नाम के साथ सम्मानार्थ 'दास' शब्द भी जोड़ लेते हैं।

चिंतादास रैदास इसी तरह के थे। रियासत में बागबानी करते थे। गर्मी की शाम, जब बहँगे और करवारे से उन्हें फुर्सत मिलती, तो वे पौले पहनकर फुलवाड़ी के कुएँ पर जाते, और देह अँगोछ — शुद्ध हो, अपने हाथ की बुनी कुशासनी पर एक दो तुलसी-माला गुरु-मंत्र की फेरते। पनिहारिनों और घसियारों को अपनी ओर आते देख अपने-जैसे पुजारियों के कई ढकोसले करने लगते। पद्मासन पर लक्का कबूतर की तरह सीना तान देते; पेट खलाकर कसके आँखें मीच लेते। मेरी ओर जब मुखातिब होते, तो अकचकाकर कहते—“जान पड़ता है, पंडित भैया बड़ी देर से मेरा यह ढोंग देख रहे हैं! खैर, पूजा समाप्ति पर है, सिर्फ़ गुरुजी की अंतिम बंदगी ही बाक़ी है।”

तीस-बत्तीस के थे। लेकिन चितादास का ब्याह कई कारणों से अब तक न हुआ था। वे बड़े आशावादी थे। अपनी 'अवधी' में जब मैं उन्हें 'बरमचारी' कहकर पुकारता, तो फूले न समाते। खासकर जब मुझे कुल्ली के नित्ये मिट्टी मँगानी होती, या दूर से नीम की अच्छी दत्तून मँगानी होती, तो अपने बरमचारी के भजन और पूजन की प्रशंसा कर देता। जब तरंग में होते, तो बिहँसकर कहते, सिर्फ पं डत भैया ने ही मुझे ठीक-ठीक समझ पाया है। मेरुदंड खमदार, गले की नसें और टोंटा निकला हुआ, उनकी निस्तेज आँखें और गड्ढेदार पीले गालों की जध दूसरे मुँहफट बागवान आलोचना करने लगते, तो हमारे आजन्म ब्रह्मचारी अपनी रेलवे के कुलियों के साथ की टनकपुर-यात्रा का वर्णन करने लगते—कैसे वहाँ हल्दी-मिरच न खाने से आदमी को पानी लग जाता है; किम तरह वहाँ की नम हवा और कुहरे में गठिया और फालिज-जैसे घातक रोग ज़रा चूकते ही हो जाया करते हैं—आदि-आदि। थारू की खूब-सूरत औरतों के टोने से बच जाना मामूली आदमी का काम नहीं।

दो महीने पेशतर मैंने यह भी जान लिया था कि बरमचारी चितादास का गुरु जटाजूटधारी एक पेशबाग (लखनऊ) का बाबा (नट) था। जो, जब आस-पास रामरज और बीच माथे में रोली का चौड़ा तिलक लगाकर साँसा साध रास्ते में बैठ जाता, तो सस्ती पुण्य लूटनेवाले भक्तों का उधर से घंटों तौता न टूटता।

शुरू मुलाकात में मेरे सुबोते को देख, चितादास मधुर, शिरस, भुजंग और-और न-जाने कितने आसनों पर योग की साधना करने लगते । कभी-कभी मैं घंटों चितादास के चमत्कार देखा करता ; उन दिनों कुछ मना-विज्ञान पर लिख रहा था ।

एक दोपहर को मैंने फलवाली के कुएँ पर धोती में साबुन लगाकर धूप गाने को छोड़ी थी । वक़्त जान चितादास मधुर मुस्कान के साथ मेरे करीब आ गए । मुझे सूरदासी भजन सुनाने का उन्हें बड़ा शौक था । आध घंटा बड़ी रंगत रही । फिर ठाकुर, चितादास के मित्र के आ जाने से, उनका जी संगीत से उबट गया । ऐसा प्रायः हो जाता था । यह ठाकुर चितादास का अंतरंग मित्र था । मेरी पढ़ाई-लिखाई और दर्जे को मजूर करते हुए भी, दोनों मित्र मुझे बड़ा भोला और दूसरों की बात में न पड़नेवाला समझ रहे थे । यह एक कारीगरी थी । दोनों अपने मतलब की बातें करने लगे ।

पहले दौंगर के बाद के बादल उठ रहे थे । उनका एक दूसरे में खमस घसकर अजीब मूरतों में बनना-बिगड़ना मुझे बचपन से ही बड़ा भला लगता आया है । लेकिन बात बिगड़ जाने के भय से मैं उनके इस सौंदर्य को आँख-भर देख न सकता था । सिर गड़ाए झाँवे से पैर साफ़ करता रहा । बकौल चितादास, दो मित्रों की बात किसी तीसरे को सुनने का अधिकार भी नहीं था ।

चितादास ने पानी का घड़ा खींचकर ठाकुर से पूछा—“ठाकुर भैया, घर से आज हन्नीखेड़ा होकर आए ही होंगे ?”

मेरी आंखें तिरछे देख, उन्होंने ठाकुर को आँख मार दी !

ठाकुर ने सिर में साबुन मलते हुए कहा—“हाँ हो, वहाँवालों को भी कुछ कम चोट नहीं आई है !”

चितादास आह्वेसर्द खींचकर सूरदास का वह गीत गुन-गुनाने लगे, जिसका भावार्थ उर्दू कविता, ‘कच्चे तागे में चले आर्येंगे सरकार बँधे’—से मिलता-जुलता है ।

इसके बाद किसी ने चितादास को कुछ कड़े शब्दों में पुकारा—उस ओर दौड़ते ही, ‘जाने को कहा’ । यह बाग-बानों का अकसर—रियासत का माली था, चितादास के इतना मटरगश्त होने पर बक-भूक रहा था ।

चिता ने झपटकर टुकनी (झुवई) उठाते ठाकुर से कहा—“भैया, थोड़ी कलमी अभियाँ चुन ली हैं । एक बड़ा ताम्रवृक्ष है । सरकार से मुझे खाने को मिला था ।”

ठाकुर ने प्रसन्न होकर कहा “क्या फालमे भी पकने लगे ?”

“बहुत ।” चितादास ने हुलरू भगते उत्तर दिया “थोड़ी खिन्नियाँ भी रख दूँगा ”

मैं बड़ी देर तक मानव-प्रकृति पर सोचता रहा ।

(२)

इस तरह हलवाहों और दाना दलनेवालों पर चितादास के त्याग और तप की छाप थी कि जाहिरा मैं भी उनसे कुछ

कम प्रभावित न था। किसान-स्त्रियाँ उनसे अपने बच्चों को भभूत और जंतर बनवा ले जातीं। मैंने भी एक दिन अपने बच्चे को 'नजर' से बचाने के लिये बरमचारी का चुटका चाहा था।

कई महीनों में मैं चिंतादास का निजी आदमी बन पाया। ठाकुर भी थोड़े दिनों में मुझसे खुलने लगा।

एक दिन फिर मैं कुएँ पर स्नान कर रहा था ; ठाकुर भी आ गया। उसने अपने में मग्न होकर कहा—“पंडितजी, अब आपके ब्रह्मचारी बहुत व्यथित रहा करते हैं।”

मैंने कहा—“हाँ, उनमें कुछ आत्मिक अशांति तो मुझे भी जान पड़ती है।”

ठाकुर ने कहा—“एक हन्नीखेड़ा है, जहाँ एक चमारिन रहती है। उसका.....”

मैंने कहा—“उसका नाम मिठानी अथवा गोली है न ? सुना है, उसके लिये कई किसानों के छैलों का हुक्का बंद हो गया है, और रोटी भी पड़ गई है।”

ठाकुर ने आगे भाँपकर कहा—“फिर आपको यह तो मालूम ही होगा कि हमारे ब्रह्मचारीजी का नाम भी उसकी सूची में लिख गया है।”

ठाकुर अपनी बुद्धिमानी पर गर्वित था—मुझे बना रहा था।

मैंने ज़रूरत से ज्यादा समझदार बनकर उत्तर दिया—

“मुझे यह भी तो छिपा नहीं कि तुम्हीं ने इस भोले जीव से अपना उल्लू सीधा करना चाहा है। तुम्हीं ने तो इसे इस तरह फाँसा है, अपने को किसी और जगह फँसाने के लिये !”

ठाकुर भेंपा ।

मैंने फिर कहा—“ये खिरनी, फालसे, आम, खरबूजे कहाँ से आते हैं ? और, मैं यह भी जानता हूँ कि कौन किसे क्या देता है, और फिर कौन किसे ।”

मेरी इस ज़रा-सी मनोवैज्ञानिक भपट में ठाकुर ढेर हो गया। लेकिन उसने जब अपना और ब्रह्मचारी का कच्चा चिट्ठा बतला दिया, तो मजमून खुद आकर ऐसा फँसा कि मुझे अपने मनोवैज्ञानिक बचपन पर हँसी आ गई ।

ठाकुर से अब मेरा कोई विशेष प्रयोजन न रहा। उससे मुझे जो मालूम करना था, मैं मालूम कर चुका था। इसी बीच रियासत ने उसका तबादिला भी किसी दूसरे हल्के को कर दिया ।

अब चितादास से मित्रता बढ़ाने की जरूरत हुई। उनका हृदय खोलने से खुला। बेपर्दगी खुद-ब-खुद आ गई। अब वह मुझे दिखाने को पूजा-पाठ कभी न करते। मुझे अपना राजदाँ भी समझने लगे ।

मैं आते-जाते बराबर गौर करता रहता। दिन को बड़े चौधरी की सख्ती और दरख्तों की सिचाई-गुड़ाई में उन्हें कुछ न सूझता। लेकिन रात को, एकांत में, उन्हें चाहनी की याद

आने लगती । कभी-कभी देर तक चिंतादास मुझसे मेरे स्त्री-बच्चों की बातें सुनना चाहते । मैं विधि-पूर्वक बतलाता, किस तरह जाड़ों में मेरी स्त्री मेरे पैर धोने का पानी नमक डालकर गरम रखती है । मेरा बिस्तर, सिर में लगाने का साबुन-तेन, धोती-तौलिया—कितने आदर से वह यथा-स्थान सुरक्षित रखकर मेरी मदद करती है । बच्चे खासकर सबसे छोटे बच्चे का जिक्र छिड़ते ही चिंतादास बाग-बाग होने लगते । उनकी बाल-क्रीड़ाएँ मुझसे सुनकर लोट-पोट हो जाते । उनकी भंगिमाएँ जैसे कहने लगतीं—ये स्त्री-बच्चेवाले भी कितने सौभाग्यशाली हैं !

ब्रह्मचार को शायद वियोग की आग में जलना बहुत पसंद आ गया था । मैंने एक इकतारा बना दिया था । 'तेरे दिल में विराजे दिलदार, सिगार यार काहे न करे'—उनके गाने की खास चीज थी । मैं अब ज्यादा गुस्ताख हो चला था । इसलिये ठाकुर का चला जाना उन्हें अधिक न अखरता था । जाते वक्त उसने ब्रह्मचारी की भेंट एक बूढ़ी तेलिन से करा दी थी । दूसरे-चौथे जब कोई खबर या सौगात हज़ीखेड़ा भेजनी होती, तो वह इसी के हाथ भेज देते ।

मुझसे बात करने में ब्रह्मचारी का यथार्थवाद दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जाता था । मैं चूँकि धैर्य और सहानुभूति से सुन लेता था, इसलिये उन्हें ऐहिक सुख की अनेक अवृत्त वामनाओं का जिक्र करने में कुछ गहत्त भी मिलती थी ।

सावन की कजलियों के दिन थे। चागे और हरियाली की खूबसूरती बरस रही थी। छुट्टी का दिन। बड़े चौधरी गंगा-स्नान करने गए थे। फुलवाड़ी के कुएँ पर, खाई के बाहर, गलियारे में गोमती की ओर जाती हुई गाँव की बेटियों और बहूटियों के खुले और दबे कल शब्द प्राकृतिक सौंदर्य को और भी सजीव बनाए रहे थे।

चितादास ने विचलित होकर कहा—“पंडित भैया ! क्या छागला में भी घुँघरूँ परो दिए जाते हैं ?”

पास ही आम पर को गल कूक उठी।

मैंने हँसकर कहा—“‘अँखियाँ भईं घटा बरसीं’—तो तुम्हारा कल्ह सधुआ की ढोलक पर खूब रहा।”

चितादास का गला भर आया। थोड़ी देर में वह आँसू पीकर बोले—“मास्टर भैया ! तुम चाहे जितना समझाओ, हम लोगों की जिदगी बेकार है।” कुछ स्मरण करके उन्हें रोष आ गया।

मैंने कहा—“आखिर क्यों ?”

चितादास ने हारते हुए उत्तर दिया—“पंडित भैया ! एक दूटी-फूटी घरवाली के लिये भी जी तरसता रह गया।”

मैंने जान-बूझकर पूछा—“लेकिन हथीखेड़ावाली से तो अब काफ़ी मेल-जोल हो चुका होगा। सरकार से कहकर किसी दिन ठाट से तुम्हारा डोला चालने चलेंगे।”

चिता ने निराशा की हँसी में कहा—“आपके मुँह में

धी-गुड़ ; लेकिन 'काहे को नौ मन तेल जुड़ेगा और काहे को मूना नाचेंगी ?' फिर उन्होंने अपने बहुत बड़े प्रयत्न पर बहुत थोड़ी आशा की बात बतलाई । उन्हें किसी पर बड़ा गुस्सा था ।

मुझे यहाँ एक नई बात मिला । ब्रह्मचारी चितादास का स्त्री-प्रेम, भलेमानुसों का-सा—जहाँ एक आदमी किसी विशेष स्त्री के लिये मरा-जिया करता है—न था । उन्हें केवल एक ऐसी चीज चाहिए थी, जिसे वह अपनी बीबी समझकर प्यार करते । वह बच्चे देती, इन्हें खाना बनाकर खिलाती । कभी इनसे रूठती, कभी खुद नाजबदारी करती । मिठानी अथवा गोली के लिये कोई खास आर न थी । वह चूँकि मिल रही थी, अतः उसी के लिये एँड़ी-चोटी का पसीना एक किए दे रहे थे ।

मैंने ज़रा उकसाकर कहा - “बरमचारीजी, पहले हमें अपने को ब्याह करने योग्य बनाना चाहिए—स्वस्थ शरीर और गाँठ में पैसा होने से ही लोग हमें अपनी लड़की ब्याहने को दौड़ने लगते हैं । नहीं तो औरत घर आकर भी भग जा सकती है ।”

चितादास ने बहुत निश्चित उत्तर दिया — “पंडित भैया ! आप बड़े सीधे बामँन हैं । आपकी निगाह छल-कपट की नहीं । आप यह नहीं जान पाते कि दस-जवार के बड़े आदमियों ने गुटबंदी कर ली है । जिस तरह भूख और ग़ैर-तंदुरुस्ती में ये लोग हम ग़रीबों को मार दिया करते हैं, उसी तरह एक

औरत के लिये भी तड़पा-तड़पाकर छोड़ देते हैं।” बड़ी युक्ति से चितादास ने साबित किया कि उनकी अकुलीनता और अर्थ-हीनता ने ही उन्हें इतना अप्राकृतिक बना दिया है। अपनी टेढ़ी टाँगों, सुन्ना-बहरी के चकत्तों और तनी हुई नसों पर धुँधली दृष्टि डालकर उन्होंने मुझसे फिर कहा—“पंडित भैया ! आप तो सात्तरी हैं, मन की बात जान लेते हैं ?”

मैं खामोश रहा।

चितादास का हाँपना जब कुछ कम हुआ, तो उन्होंने मुझ पर एक और रहा कसा। कहा—“भैया, तुम राजा को अखबार सुना रहे थे, जिसमें लिखा था—‘हमारे देश में बनिस्बत मर्दा के ढाई करोड़ औरतें कम हैं। तुम्हीं ने छोट्टू काका से कहा है कि कहीं के महाराजा साहब के एक सौ एक औरतें हैं, और सभी एक-से-एक बढ़कर। और, यह तो आँखों देखी बात है कि गढ़ी के भीखू मिसिर ने इसी साल, साठ साल की उम्र में, अपना छठा ब्याह किया है ! उनकी लाल देसू-सी आँखें अब कुँदुरु हो गई हैं।”

लेकिन समयाभाव में चितादास को अधिक न छेड़ मैं किले की ओर चल पड़ा।

(३)

पंगु और विक्षिप्त चितादास का नाम अब रियासत की बागबानी से काट दिया गया है। मुहताजों के खाने से उन्हें कुछ दे दिया जाता है। गाँव के घूरे पर उनकी भोपड़ी डाल

दी गई है। ठाकुर और तेलिन कभी भूलकर भी उनके पास नहीं फटकते।

किंतु तीसरे-चौथे अपने चीथड़ों की पोशाक को झाड़-पोंछकर एक आइने के टुकड़े में घंटों तिरछे-सीधे होकर चिंतादास अपनी सूरत आज भा देखते हैं। फिर करीब के जंगल में निम-कौड़ियों या जामुन की गुठलियों की डाली एक टीन के गंदे टुकड़े में मजाते हैं ! बार-बार एक टीले तक जाकर वापस आ जाते हैं। कैसा अद्भुत व्यापार है !

उस दिन मैंने पूछा—“बरमचारी, कहाँ को ?”

उन्होंने बड़े तपाक से उत्तर दिया—“पावँ लागू पंडित भैया, यहीं, ज़रा हन्नीखेड़े तक जाना है।” फिर चल दिए।

मैं अवाक रह गया। किस कारीगरी से ठाकुर ने चिंता के हृदय पर हन्नीखेड़ा और गोली का चित्र आँक दिया था कि जीवन की ऐश्वर्य-हीन इस जीर्ण-शीर्ण दशा में भी उनके लिये वही यथार्थ से भी अधिक आकर्षक सत्य था !

साथी

(१)

मुंशी कृपाकृष्ण एम० ए० का समझदार लोग आजकल पागलों में शुमार कर रहे थे । असहयोग-आंदोलन में इन्होंने ढाई सौ रुपए महीने की सरकारी नौकरी का चुटकी बजाते इस्तीफा दाखिल कर दिया । शहर का घर और देहात की जमींदारी, हाथी-घोड़ों के साथ, अराजकता में जूबत हो गई । लेकिन इन्होंने न खदर पहनना छोड़ा, न जान-बूझकर की हुई किसी बात के लिये सरकार से माफ़ी ही माँगी । पाँच बार राजद्रोह में जेल जा चुके थे । यह मनसा, वाचा और कर्मणा अहिंसावादी सिद्धांत के माननेवाले थे ।

मुंशीजी को बेवकूफ और सिढ़ी समझनेवाले दो प्रकार के थे । पहले वे, जो अपरिवर्तनवादी, कोमल-प्रकृति, भाग्य और भगवान् की कृपा का पूरा उपभोग करने, इस्तमरारी पट्टे और सनदों के रखनेवाले सेठ-साहूकार, राजे-महाराजे और उनके पिछलगुए थे । जिनका कहना था, भगवान् का सबसे सगा चक्रवर्ती बादशाह है । अच्छी-बुरी, समझ में आनेवाली अथवा न आनेवाली राजाज्ञा मानना और लोगों से मनवाना ही रैयत का धर्म है । दूसरे वे, जो उग्र प्रकृति के थे ; जिनका खयाल था कि आदमी-आदमी सब समान ; यह तो कुछ की मक्कारी है,

जो दूसरों से बड़े बन गए हैं। अहिंसावाद आत्महनन से अधिक कुछ नहीं ; पत्थर का जवाब सिर्फ उससे भी बड़ा पत्थर। अगर हमें कोई सतावे, तो हम उसे सवाया सताने की कोशिश करें। अगर किसी ने हमारे बाल-बच्चों को बेइज्जत किया है, तो हमें भी लाजिम है, हम उसके साथ वैसा ही सलूक करने का इंतजाम करें, ख़वाह इसमें हमारी जान ही क्यों न चली जाय। हम भूत-प्रेत होकर भी अपना बदला जरूर चुका लें।

शहर-बाहर, नदी-किनारे, घने जंगल बीच, कब्रिस्तान की एक बड़ी कब्र के चबूतरे पर बीस-पचीस युवक और इतनी ही युवतियाँ मुंशीजी को घेरकर बातें कर रही थीं।

अध्यापिकाजी ने मुंशीजी का मखौल उड़ाते, अपनी बगल के युवक से कहा—“ख़ूब, डॉक्टर नाथ, ‘नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।’ यह मुंशीजी का सिद्धांत भी ख़ूब है। लाइए, मैं आपकी उँगली काटती हूँ। देखूँ, कैसे दर्द नहीं होता, किस तरह ख़ून नहीं निकलता ?”

मुंशीजी ने संजीदगी से कहा—“डॉक्टर साहब, मनुष्य की कुछ परिभाषा है। उसे निर्माण-प्रिय होना चाहिए। बिध्वंस-कारिता पशुता के सिवा और क्या है ?”

डॉक्टर ने उत्तेजित होकर कहा—“यह सब कुछ है, लेकिन इस बात को आप मान चुके हैं कि भीरुता मनुष्य में नहीं होनी चाहिए। उसका स्थान पशु-हृदय है।”

“इसे मैं मानता हूँ। परंतु निर्भयता विवेक के परे उहंडता हो जाती है, इसे तुम कबूल क्यों नहीं करते?” मुंशीजी ने अपनी अविचल मुद्रा में डॉक्टर को समझाते हुए कहा।

डॉक्टर ने उपेक्षा में कहा—“यह आप लोगों की निर्जीव क्षमाशीलता और आत्मदुर्बलता है, डाकू हमारा घर लूटें, और हम उन्हें आराम करने को पलंग बिछवा दें?”

मुंशीजी ने मनमोहक मुस्कान में कहा—“तुम्हारे स्कूल ने यह कभी न सोचा कि एक डाकू को डाकू के तरीके पर सजा देनेवाला भी दूसरा डाकू है, फर्क सिर्फ नए-पुराने का है।”

डॉक्टर असंतुष्ट होकर बोलने चले, लेकिन अध्यापिकाजी ने उनकी बात छीनकर कहा—“मुंशीजी, क्या आपकी मंशा यह है कि जो हमें गाली दे, उसे हम आशीर्वाद दें?”

मुंशीजी ने समर्थन में मुस्किराते कहा—“मनुष्य का केवल यही सिद्धांत उसे मनुष्यता की चरम सीमा तक पहुँचा सकता है। जातीय, विजातीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय विद्रोहों में युवक-युवतियों और कुशिक्षितों से प्रायः यही भूल हो जाया करती है। दंगों में एक फ़िरके के जवान दूसरे फ़िरके की स्त्रियों के स्तन चाकुओं से काट डालते हैं; दुधपिए बच्चों और निरीह बच्चियों को भाले की नोक पर उठा देते हैं; बुड्ढों को छुरा भोंकते हैं; वे अधम हैं, कायर हैं। आदमी को उनसे घृणा ही करनी चाहिए। साथ-ही-साथ जब दूसरे फ़िरके के लोग केवल बदला लेने की गरज से

उनसे भी गिरे साधनों का प्रयाग करने लगते हैं, तो उन्हें शाबाशी नहीं दी जा सकती ; बल्कि इन्हें तो पहलेवालों से भी अधिक गुमराह समझना चाहिए ।”

सब युवती और युवक एक दूसरे का मुँह ताकने लगे ।

मुंशीजी अपनी रौ में कहते चले गए—“देखो, अनुग्रह और प्रेम अथवा क्षमा-भाव, काशाधाम, मक्के शरीफ, ख्वाह फिलिस्तीन, कहीं भी हो, रहेगा यकसाँ । इस बात को आदमी सिर्फ आदमीयत की ओर बढ़कर ही देख सकता है।”

डॉक्टर ने घृणा की हँसी हँसकर कहा—“यह सब तूफान बदतमोज़ी है । इस विचार के लोग कुत्त की मौत मर जाते हैं ।” फिर कहा—“कितनी बड़ी ग़लती है ग़दारों की सज़ा न करना ।” बड़ दाँत पीमने लगे ।

मुंशीजी ने उठकर कहा—“डॉक्टर, आप बहादुर हैं, लेकिन बहादुरी का अर्थ ग़लत करने लगे । अपनी शक्ति का दुष्प्रयोग करते और कराना चाहते हैं । तोप, तलवार, तमंचा ताननेवाला बहादुर नहीं ; जो निहत्था और खुले सीने पर ज़ालिम की गोली खाने को तैयार है, बहादुर वह है ।”

“शिरा, इस खुदकुशी के मिद्धांत ने दुनिया चौपट कर दी है ।” डॉक्टर ने झुँझलाकर कहा—“ज़बाँदराज को जब यह डर नहीं रहता कि ज़रा भी गुस्ताखी करने पर उसकी ज़बान खींच ली जायगी, तो वह नंगा नाचने पर उतारू हो

जाता है। उसे यह डर नहीं रहता कि किसी की ओर बेजा उँगली उठाते ही वह सिर के बल खड़ा कर दिया जायगा। साथ-ही-साथ वे हस्तियाँ, जिन्होंने हक़ की कतह के इंतज़ार में अपना कमाल का जामा ग़ारत कर दिया, आज दुनिया के साथ न-जाने क्या सलूक कर गई होती।”

मुंशीजी ने अमलिया-बाग़ की ओर चलते डॉक्टर के साथियों से कहा—“ताज़ुब है, जिस तरह ज़ालिम ज़ालिमों का साथ देते हैं, मज़लूम मज़लूम का नहीं। वरना यह पशु-बल कभी का बेकार हो गया होता। गोले खानेवालों की तादाद यहाँ तक बढ़ सकती है कि तोपों के मुँह आकाश की ओर हो जायें। उलटी चढ़ाई में तोपवालों का तिल रखने की जगह न मिले; उनके गोला-बारूद का न मालूम क्या हो; उनके हाथ और ज़बान बँध जायें।

(२)

मुंशीजी की उम्र करीब छब्बीस-सत्ताईस साल की थी; इकहरे बदन के; ख़ूब स्वस्थ, मज़बूत। आंदोलन के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दौरों में कभी-कभी उन्हें चार-चार दिन खाना न नसीब होता। लेकिन कामयाबी न होने पर भी उनकी कांति धूमिल न होती।

मुंशीजी को अपने कुटुंब पर बड़ा क़ाबू था। समय पड़ने पर सब-के-सब अभिन्न-हृदय साबित होते। शायद इसकी सबसे बड़ी वजह यह थी कि घर का हर शख्स अपने विचार

और आचरण के लिये स्वतंत्र था। मूँगा—मुंशीजी की स्त्री, इधर पहाड़ की तलहटी की ओर, भाँभर की किसी थारू किसान की लड़की थी। जब यह बी० एस्-सी० में थे, तो एक बार कुछ खनिजों की तलाश में उधर गए थे। वहाँ गाँजर के एक रेलवे-स्टेशन से इसके बाप ने इसे जबरदस्ती इनके साथ कर दिया, और यह आकर इनके घर रहने लगी। गोद में एक दो साल का, खूब तेज बच्चा भी था। मूँगा मुंशीजी को प्यार करने लगी। और कुछ दिनों में दोनों को राजी देख एक दिन मुंशीजी की माँ ने इन दोनों को पति-पत्नी हो जाने के लिये सलाह दे दी, मूँगा मुंशीजी के सत्संग में खूब पढ़-लिख गई; मैट्रिक पास किया; दो बार जेल भी गई।

मुंशीजी का भाई विश्वंभर बचपन में बड़ा शरारती था; मूँगा और मुंशीजी को बात-बात में परेशान करता। दिन-भर आवारागर्द लड़कों में घूमा करता। उस वक्त, ये दोनों शिकायत करनेवालों से उसे माफ़ कर देने के लिये मिन्नत करते। नुकसान का हर्जाना अदा करते, लेकिन बच्चे को जब किसी ओर से भी न आने देते। दोनों शख्स बड़े प्यार से उसे सिर्फ़ ज़रूरत-भर को समझा देते।

फूलकली इस वक्त, तेरह साल की थी, बड़ी कोमल और दयालु प्रकृति की। बचपन से ही कट्टर मूर्ति-पूजक, त्रिकाल संध्या और आरती करनेवाली। विश्वंभर धर्म और भगवान्

के ममले को मानव-जीवन में प्रधानता न देता था। फिर भी बहन से पूरी सहानुभूति रखता। उसकी राधा-माधव की मूर्तियों का वह साकार उपासकों से भी अधिक आदर करता। वह कहता, मुझे मूर्तियों से दिलचस्पी नहीं, लेकिन फूल को सुखी और शांत रखना मेरा फर्ज है।

मुंशीजी और मूँगा में कभी गृह-कलह हुआ ही नहीं। जीवन की बड़ी-बड़ी पहेलियों को हल करने के उपरान्त उन्हें इतनी फुरसत कभी न लगती कि वे खाने-ओढ़ने और रहने-सोने के लिये आपस में कुँजड़ों की बहस करते, जब जैसा समय हुआ, वैसा हो गया।

मदुर्मशुमारी में शुमारकुनिदा के बहस-मुबाहिसे पर भी अपनी जाति के खाने में 'आदमी' और धर्म के खाने में 'आदमीयत' लिखवाया, मुंशीजी पर फबती कसते हुए एक इतिहास के प्रोफेसर साहब ने पूछा—“क्यों साहब, श्री-विश्वंभरजी को यह नया धर्म और नई जात आप ही की मारफत मिली होगी ?”

मुंशीजी ने हँसकर कहा—“जी नहीं, इन बातों को उसने अपने ही में खोज निकाला है। इस मामले में मैं उसका शागिर्द हूँ।” फिर गंभीर होकर कहा—“बच्चों की स्वतंत्रता में बाधा देने के लिये दुनिया ही क्या कम है, जो हम उन्हें जायज, मन की बात न करने दें।”

इस बार जेल जाते मुंशीजी ने मूँगा से दो बातें कही थीं।

पहली यह कि वह इस वक्त, बच्चों की पढ़ाई-लिखाई और उनके रोजी-रोजगार का कोई प्रयत्न और प्रबंध न करे। जिस सूरत में देश के अनेक बच्चे रह रहे हैं, वह भी उन्हें उसी तरह रखे। दूसरी बात में उन्होंने यह समझाया कि असहयोग के सिद्धांत समझनेवाले बहुत हो गए हैं, वह उसे करना शुरू कर दे।

घर में विश्वपर, फूलकली, दो चार-चार साल के लड़के मुंशीजी के भाई-बहन और चचाजाद भाई-बहन थे। मूँगा मुंशीजी के पास आने के दिन ही से सबको अपनी साधना का साधन समझने लगी। मुंशीजी की मा के मर जाने पर सब-के-सब बगैर मा-बाप के हो गए थे। मूँगा में मातृत्व की भावना उसके बचपन ही से जग चुकी थी। मा के प्यार के लुटे हुए मुंशीजी के छोटे भाई गोदी में लेट, जब इसके बिना दूध के स्तन पीने लगते, तो वह हँसकर मा की दूध उतारनेवाली मुद्रा में उनका सिर सहलाने लगती। मुहल्ले की अट्ठड़ शौक्तीन पछाहीं सुनारिन मुंशीजी का प्रायः रास्ता रोक्कर शिकायत किया करती—“बबुए, तेरी बहू अपने सोने के शरीर को सेतमेत उन जमूरो से नुचवाकर गारत किया करती है। तू उसे और उन्हें बरजता नहीं ?” मुंशीजी हँसकर चल देते।

यहाँ भी बबुआइनों के बीच मूँगा किसी से किसी प्रकार दबना तो जानती न थी। कभी-कभी कुछ नियमित रूप से छ-छ

सौ, चार-चार सौ रुपए माहवार नौकरी और गुलामी का जंजीर में बँधे, देशी साहवों की विदेशी वस्त्राभरणों और स्वर्ण-शृंगलाओं में बिंधी मामूली चारित्रिक कसौटन में मोम-सी पिघल जानेवाली मेम लोग उसे मुंशीजी के खूब पढ़-लिखकर भी ऐसे परेशानों-पसंद त्यागी होने पर इसकी खहर की फटी धोती और नंगी-बूची नाक की हँसी उड़ाना चाहतीं। लेकिन उसकी महार्शात मुद्रा, स्वदेश, स्वदेशी, संयम और सद्व्यवहार पर ली हुई मीठी चुटकियाँ और कोमल उलाहनों का यह प्रभाव होता कि कुछ देर में उनके वाग्वाणों का असफल महास्त्र उन्हीं की ओर हो जाता, जिससे वे अपने ही में घायल होकर लज्जित होने लगतीं, यद्यपि मूँगा का काम हर समय हर बहन के हर क्रिष्म के जख्म पर प्रेम और सहानुभूति का फाहा रखना ही था।

मूँगा कहा करती, पशु-माताओं की तरह हमें भी चाहिए कि बच्चों के भौतिक शरीर को खूब चूम-चाटकर दुनिया से लोहा लेने के लिये तैयार कर दें। बच्चे का मानसिक विकास बहुत कुछ आप-आप हो जाता है। मा को उसे अपनी कमजोरियों का खार कभी नहीं देना चाहिए।

(३)

भग जब आदमी में घर कर जाता है, तो उसे हैवान से भी बदतर बना देता है। चूँकि सरकार मुंशीजी और उनके कुटुंब के खिलाफ थी, इस कारण उनके शुभचिंतक भी उन्हें

खुलकर न चाह सकते थे । सरकार का रुख देखकर सरकारी पिटू इन पर बड़ा जत्र करते; इन्हें खूब सताते, तो कुछ लोग इसे देख मन-ही-मन दुखी होते । कुछ तो देवी-देवताओं से इनके कष्ट-निवारण की प्रार्थना भी करते । लेकिन दरअस्त ये लोग इन लोगों के हक में उनसे ज़रा भी ज्यादा अच्छे न साबित होते, जो इनके कष्ट देख मन-ही-मन खुश हो लिया करते थे । मुहल्ले के बैकर बनिए, बड़े-बड़े सरकारी अफसरान और अन्य धनी-वर्ग अपने लड़के-लड़कियों को विश्वंभर और फूल से परहेज रखने को कहते । इन्हें लोग बागियों के बेटे कहते थे । आंदोलन की शुरुआत में घर में चरखे चलते थे, साथ-ही-साथ मुंशीजी ने एक करघा भी बना लिया था । पहाड़ी प्रदेश में कतार्ई-बुनार्ई का काम कभी गैर-क्रानूनी नहीं करार दिया गया है, इस कारण घर के कपड़ों में सबसे अधिक मदद मुँगा की होती । जब करघे और चरखे खानातलाशियों में तोड़ डाले गए, तो ये लोग जेबी तकुलियों से सूत कातते और खदर-भंडारों से कपड़ा बदल लाते । जब खदर-भंडार और उनकी चीज़ें ज़ब्त होने लगीं, तब विश्वंभर ने जुलाहों से बदलाई शुरू की, जिससे सादा भोजन और वस्त्र बहुत मजे में चलता गया ।

किराएदार ने यह कह-कहकर,— भई, अपने साथ मेरा भी क्यों सत्यानास करोगे' मकान खाली करा लिया था । सामान सदर सड़क की कच्ची पटरी पर, इमला की छाँह में, रखा था ।

यह तय करके कि आज यहीं विश्राम होगा, विश्वंभर जेल से आया हुआ मुंशीजी का खत मूँगा और फूल को सुना रहा था। कमलकुमार (मूँगा का बच्चा) विश्वंभर की पीठ पर सवार उसके बड़े-बड़े बालों से अपनी नन्हीं उँगली बाँध-बाँधकर खेल रहा था। चचाज्जाद छोटे भाई-बहन पाम ही, रेलवे-लाइन के करीब, तलैया में काँटे लगाकर मछलियाँ पकड़ रहे थे। मूँगा बहुत साफ़, भीगे चने और गुड़ चीनी के प्याले से विश्वंभर और फूल को चम्मचों खिला रही थी। बीच-बीच में विश्वंभर कहता, 'भाभी', तू भी एक चम्मच ले ले, मगर मूँगा मा की भाषा में इनकार कर जाती। इस वक्त, घर-भर के कपड़े पुराने होकर कट-पिट गए थे, लेकिन साफ़ इतने कि उन पर मक्खी न बैठे। साबुन को पैसे न रहते, विश्वंभर जंगल से बहुत सी रेहू मिट्टी (छार) उठा लाता, उसी से सब-के-सब अपने को और बुराक बनाए रहते।

(४)

सड़क की दूसरी ओर गंदे नाले पर कुछ सफ़ेद-पोश, कचालू-मटर, फ़ीरीनी फ़ालूदे, बंगाली मिठाई और ओला-बरफ़ खा-पी रहे थे, खोंचों पर मक्खियाँ भिनक रही थीं। खोंचेवाले अपने को चंदन-बंदन, तेलिए शलूकों और चाँदी-सोने के बटनों में सजाए हुए थे। पाक-छून और खाद्याखाद्य की बड़ी जाँच-पड़ताल थी। आवाजें आ रही थीं 'ये भाई, हमारे दोने में लहसुन-प्याज की कर्छी मत छुलाओ, हम रामनाम सुने हैं',

‘ये जी, हमारे मज्जहव में गौर-मज्जहवी का छुआ हुआ पानी पीना हराम है।’ इत्यादि।

एक लड़का अपने बधिया बकरे को जलेबियाँ खिला रहा था, ताकि वह बहुत जल्द बहुत और अच्छे गोशतवाला हो जाय। दूसरा अपनी जेब के पैसे-रुपए खनकाकर एक भिखमंगे को बिरा रहा था, तीसरा मित्र के लिये गर्म इमर्तियों की डाना सजा रहा था, और हलवाई की सयानी बेटी को आँखों छेड़ रहा था।

उसी जगह सैलाब के मारे, जीविका-विहीन कई किसान-कुटुंब, रोजी की तलाश में थके-माँदे, शहर आ रहे थे। एक भुक्खड़ चार साल की लड़की, बेबस, खोंचेवालों की ओर दौड़ी, लेकिन एक के डाँट देने से थोड़ी दूर ठिठककर राल घूँटने लगी। ‘रुक जा मेरे बाप की पतोहू’, कहकर एक और भोंड़ी गाली के साथ मलाई की बरफवाले ने उसकी ओर कंकड़ी फेंकी। नाली साफ करनेवाले मेहतर ने भी उस बच्ची को, लोगों का मुँह देख, गंदा झाड़ू छुला दिया, जिसमें यजमानों का मनोविनोद हो।

कमल इधर भग आया, इसलिये विश्वंभर उसे पकड़ने आया था। यहाँ का दयनीय दृश्य देख उसका बागी खून खौल उठा। दो किसानों के बच्चे कूड़े में पड़े लोगों के जूठे पत्ते चाट रहे थे। कुछ दयालु अपनी बची हुई जूठन उन्हें बड़ी दयालुता से देकर लोगों से वाहवाही ले रहे थे। तीन-चार

जवान किसान-कुमारियों से शहर के शुहदे मिठाई खाने को कह रहे थे। वे भड़क-भड़ककर बूढ़ियों में छिपकर लुब्धों की गंदी आँखों के निशाने बचा रही थीं। विश्वंभर किसी से कुछ कहता, तो लोग उसका भी उपहास करते, इसलिये वह कमल के साथ दोनों किसान-बच्चों को गोद में उठाकर अपने सामान की ओर चला, किसानों से भी उधर ही आ जाने को कहा।

मूँगा एक किसान-बालक के पैर में पट्टी बाँध उसे सेक रही थी, और बिस्कुट खिला रही थी। अभी-अभी एक मोटर ने उसे कूच दिया था। ड्राइवर उसके बाप को खतावार ठहराकर, ठोकर मारकर गाड़ी भगा ले गया था। चुड़ड़ा खड़ा रो रहा था।

फूल ने किसानों को चने और गुड दिया। बच्चों को गर्म-गर्म चाय बनाकर पिलाई। किसानोंने मूँगा से 'कहाँ जायँ' की सलाह लेने लगीं।

शाम को डॉक्टर नाथ और उनकी पार्टी इधर चहलकदमी को निकली, अध्यापिकाजी भी साथ थीं। इस वक्त पूरब की ओर से व्यथित किसानों का एक और भुंड आकर गल्ले की बाज़ार में फैल रहा था। एक कृपालु हिंदू-होटल का बचा खुचा खाना किसान-बालकों के सामने फेंक गए थे। दाल, मात, कढ़ी, सब्जी, रायता—सब एक में सने हुए—के गोले बनाकर बच्चे सूखे गलों के नीचे उतार रहे थे। एक के धाँसा बैठ गया था। वह पानी घूटवर और गला सहलाकर कौर नीचे उतार

रहा था, निगलने में सबकी आँखें और नसें निकली पड़ती थीं। साथ में एक कुत्ता भी खा रहा था, नानपाव के सूखे छिलकों को नोचने में आदमी के बच्चे गिद्ध-से लड़ रहे थे।

डॉक्टर नाथ से विश्रंभर ने कहा, इस बार जब वह जेल मुंशीजी से भेंट करने गया था, तो उन्होंने बतलाया कि आराम-कुर्सी से केवल किताबों और नक्शों का मिलान करके सफल समानतावादी बनना संभव नहीं। इसमें प्रत्यक्ष अनुभव की बड़ी जरूरत है, आप और अनुमान का ज्ञान इसमें कम काम कर सकता है।

डॉक्टर नाथ ने मूँगा से बच्चे को लेकर अध्यापिकाजी के घर रहने को कहा। लेकिन यह कहकर उन्होंने वहाँ जाने से इनकार कर दिया कि थोड़े-दन उनका विचार गृह-विहीनों की भाँति रहने का है। दूसरे, एक सिद्धांत के न होने से वे उनसे दुखी रहेंगे; वे उन पर तरस खायँगे।

एक बार ऐसा हुआ कि मुंशीजी दो साल तक जेल नहीं गए। इस दरमियान उन्होंने एक दैनिक पत्र के संपादक रहकर घर-गृहस्थी का साजोसामान उत्तम प्रकार का बना दिया। लेकिन एक बार जब प्रेस के साथ-साथ इन पर भी ५,०००) जुर्माना हुआ, तो सब माल-असबाब जन्त होकर आधी-पौनी कीमत पर नीलाम हो गया; बच्चा भाई कई दिन तक अपनी पाली हुई विलायती बछिया के लिये रोता रहा। तब से इन्हें घर-बार सिर्फ जरूरत-भर को पसंद रहा। वे

कहा करते, हमारे साथियों को घर-बार की ममता नहीं होनी चाहिए।

किराए का मकान छुट चुंका था। मूँगा, विश्वंभर, फूलकली और चारो छोटे बच्चे अनाश्रित, शहर में इधर-उधर फिर रहे थे। विश्वंभर और फूलकली को भी पिकेटिंग में, तीन-तीन महीने की सजा हो चुकी थी। छोटे बच्चे भी ठुकराए जाते। कमल ने भी एक छोटी-सी झड़ी लेकर एक बार कहा—‘छुतंतलता की जय’ (स्वतंत्रता की जय)।

जिस पर एक शख्स के उसके मुँह पर एक चपत मार देने से उसकी छोटी फूफी और दोनो काके (मुंशीजी के चचाज्जाद भाई-बहन) बिगड़ पड़े। भंडियाँ ले-लेकर चौरस्ते के ऊपर गिन-गिनकर इक्कीस-इक्कीस दफे तीनो ने ‘स्वतंत्रता की जय’ के नारे क्रांती नारों के साथ लगाए। खूब पिटे, मारे चपतों के मुँह लाल हो गए, लेकिन उन्हें जब तक जो कुछ कहना था, कहते गए। यहाँ तक कि अंत में उन्हें चौकी उठा ले जाना पड़ा। जहाँ बुजुर्गों को कहना पड़ा कि चूहे का बच्चा बिल ही खोदता है।

पुलिस को इन अबल बच्चों में हिंसात्मक क्रांति की बू आती थी। आला अफसर साहब का खयाल था, इन लोगों का सपर्क राजद्रोहियों से है, और अगर मौका दे दिया गया, तो जन-साधारण में ये लोग अपने बागी विचार फैला देंगे। विश्वंभर और फूलकली से शहर के युवक और

युवतियाँ बात करते घबरातीं। मुश्तहरी हो गई थी कि फलों हुलिया की लड़की और लड़का सरकार के खिलाफ रिआया के बच्चों को बरगला सकते हैं, उनसे परहेज रक्खा जाय। धर्मशालाओं और मंदिरों के प्रबंधक इन्हें दूर ही से लताड़ने लगते कि कहीं पुलिसवाले उन्हें इनमें सीधे-सादे बात करते भी न देख लें। इसका कारण यह था कि उस वक्त, खहर की टोपी दिए लोगों के साथी भी डंडे और ठोकर के बाद लारी में भरकर बीसों मील की दूरी पर छोड़ आए जाते।

इन लोगों से अब सरकार तंग आ गई थी। दसों जगह लात-बूँसे और हंटर पड़े, दाँत टूटे, सिर फटे, कान कटे, लेकिन इन लोगों ने अपना रवैया न बदला, बल्कि इनके 'इन्किलाब-जिंदाबाद' के नारे, कैंगलों में, दिन दूने रात चौगुने बढ़ते गए।

पहलेपहल विश्वंभर 'छोटी-छोटी बातों से बड़ी-बड़ी बातें बनती हैं' पर पब्लिक मीटिंग में लगातार डेढ़ घंटा बोला; मज्जह की दलीलों पर लोग अवाक रह गए। उसने कहा—“होने भुनने में एक चिनगारी आग बगैर बुझी रह जाना कितनी मामूली बात है, लेकिन वही ज़रा-सी आग की चिनगी जब मुलगकर मीलों घना जंगल जलाकर खाक कर देती है, तो कितनी बड़ी बात हो जाती है। हिंदोस्तान को जब पहले-पहल विदेशी आए होंगे, कितनी छोटी बात होगी; ज्यादा-से-ज्यादा दस-बीस होंगे। उस वक्त, उनसे नफा-नुकसान ही

क्या होगा ? लेकिन वही मसला आज इतनी बड़ी बात हो गया है कि उससे बड़ा इस वक्त, देश के लिये कुछ है ही नहीं ।

पुलिस की ज्यादाती और कपड़े की कमी में जब शहर का जाड़ा अजहद परेशान करने लगा, तो ये लोग दूर की एक जंगली देहात को कुछ खाना-बदोशों के साथ चले गए । यहाँ जाड़ा अधिक था, लेकिन जलाने को तिनके, सूखी पत्तियाँ और लकड़ियाँ इफ़रात थीं, जिससे सब-के-सब कड़ी-से-कड़ी सर्दी का मुक्काबिला कर लेते । काल पड़ा था । लोगों को दरख्त की छाल और पत्तियाँ खाना मालूम न था । मूँगा ने एक जंगली बालदार खर की, जो यहाँ बहुत पैदा था, रोटी और लप्सी बनाना साँसियों (खानाबदोशों) को सिखा दिया ।

विश्वंभर और फूलकली जंगली वस्त्रों में शिजा और संगठन-शक्ति भरने लगे । उनका कहना था, हम गरीब चाहे जिस धर्म, मजहब और फ़िरक़े के क्यों न हों, हमारी दरिद्रता एक-सी है, भूख की ज्वाला सबको एक-सी सताती है । हमारा रोटी का मसला एक है, और वह केवल एक साथ अपने मुखालिफ़ का मुक्काबिला करने से ही हल हो सकता है । अमीरों की यह सदियों की किलेबंदी गरीबों की टूटी-फूटी और बिखरी आहों से नहीं टूट सकती । इसे उड़ाने को एक भीमकाय सामूहिक शरीर की गूँज चाहिए । अमीरों में कितना मेल है । एक दूसरे को सूरत से पहचान लेता है ।

बड़े-बड़े नमस्ते, अस्सलामवालेकुम और ग्रीटिंग्स का व्यवहार सिर्फ़ शुहरत सुनकर होने लगता है ।

गरीब की भी सूरत गरीब से छिपी नहीं रह सकती । भूखों को भूखे नहीं पहचानते, यह ताज्जुब है ।

यहाँ भी डॉक्टर नाथ एक दिन मुंशीजी के खानदान को समझाने आए । उनका वही पुराना कहना था, 'तुम्हें बल, बुद्धि और विद्या मिली है, उसे बग़ैर किसी मुआविजे के जाया न करो ।' मुंशी-खानदान ने डॉक्टर के सामने बड़ी विनम्रता से अपना रास्ता सही और साफ़ साबित कर दिया ।

मूँगा ने मुंशीजी के पास केवल एक बात सीखी थी, परिस्थिति का मुकाबिला करते हुए अपने लक्ष्य पर आगे बढ़ना । यही मूलमंत्र बच्चों के सामने भी था । लोग इसका अनुसरण, खुदबखुद करने लगते ।

इस पहाड़ी देहात के गरीब बहुत गंदे थे । बेडौल पत्थरों की टेढ़ी-मेढ़ी दीवारों पर अनगढ़ी लकड़ियाँ बे तरतीब, उलटे-सीधे फंदों बग़ैर बटी रस्सियों से ताड़ के पत्ते और फूस बिछाकर फाँस देते, यह इनका बेवक्त, खाने-पीने, बेढंगे रहने-सोने और फूहड़पने से धरने-उठाने का घर हो जाता ।

मूँगा ने विश्वंभर और फूल की सहायता से बहुत कम समय में और बड़ा अच्छा भोपड़ा तैयार किया । उसने काहिल किसानियों में सीने-पिरोने और कातने-बुनने का शौक पैदा किया, पारिश्रमिक में वह उनके पति और बच्चों से

अपना घर बनाने-सँवारने में सहायता ले लेती। बाक़ायदा आँगनदार घेरे में ज़रूरत-भर को चार लंबे-चौड़े और ऊँचे कमरे तैयार हो गए, हर एक में हवा और रोशनी की काफी गुंजाइश। नक्शा ऐसा कि सफ़ाई करते वक्त, एक-एक तिनका तक न रह जाय। रसोईखाना, पानी और नहाने के स्थान अलग-अलग, खूब साफ़ बने थे। एक में बैठकर कायम की गई। मूँगा उसे हर सुबह, सफ़ाई के वक्त, खुशबूदार फूल और खूबसूरत जंगली बेलों से सजा देती। इसमें वह किसानियों के साथ बैठकर उन्हें अपने पति, पुत्र, पुत्री और पुत्र-बधुओं से सच्चे व्यवहार करने-कराने की बात किया करती।

मूँगा का घर बहुत थोड़े दिनों में गाँववालों के लिये एक माडल हाउस का काम कर गया। खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग पकड़ने लगा। किसान को अपने जीवनयापन में कम-से-कम पैसे और अधिक-से-अधिक परिश्रम की ज़रूरत हुआ करती है। सत्शिक्षा से जितनी ही लोगों की सुस्ती दूर होती, उतनी ही उनकी मिहनत खिलती और गाँव का काया-कल्प होता जाता। कुछ और दिन बीतने पर यह गाँव इस पहाड़ी तलहटी-भर के गाँव का आदर्श बन गया। हर बात में जागृति नज़र आने लगी।

पहले किसानों में पशुओं का-सा भय था। सरकारी सहना के आते ही खोहों और गुफाओं में छिपने भगते। उनके पढ़े-

लिये बच्चे भी लट्टा राजा और मेढक प्रजा के-से क्रिस्से पढ़-पढ़कर जमाने के साथ चलने की कोशिश करते डरते थे। सच्ची शिक्षा उन्हें आदमीयत वापस देने लगी। हम किसानों क्यों करते हैं? हमें उसका लगान क्यों और कितना देना पड़ता है? राजा-प्रजा का सिद्धांत क्यों और कैसा है? ऐसे दसों प्रश्नों की शंका उठाकर किसान-युवक उसका समाधान चाहने लगे।

विश्वम्भर और फूल ने मृंगा के नेतृत्व में एक आश्रम और माडल स्कूल कायम किया, जिसमें प्रवेश पाने के लिये किसी धर्म अथवा जाति-विशेष का होने की जरूरत किसी को न थी। शिक्षा-क्रम ऐसा कि बच्चे कली से फूल अपनी निज की खशबू से बन सकें। शिक्षक केवल रक्षक बना रहता। वह उन्हें अपना बोझा न देकर स्वतंत्र रूप से विकसित होने में उनकी सदा सहायता किया करता। लोग भूतकालीन त्रुटियों से बने हुए वर्तमान को ठीक करने में लगे थे, जिसमें इसको सुंदर, अब की गिरहें भविष्य में सुंदरतम होकर खुलें।

शक जब बढ़ने लगता है, तो आदमी अपनी ही परछाही से चौंकता है। उस वक्त राजा अपनी प्रजा पर इतना शुबहा करने लगा था कि उसके मामूली मनुष्योचित कार्य-क्रम और विकास में भी उसे तख्त उलट देनेवाली बातों का चित्र दिखने लगता। किसानों के लड़के पढ़ाके बनाने लगे, अफसरों को उनमें बमबाजों की सूरत नजर आने लगी।

अंत में जासूसों ने एक दिन इस मुक़ाम को भी सूँघ लिया। उलटी-सीधी शिकायतें होने लगीं, और एक सप्ताह में पूरी पहाड़ी तलहटी घोड़ों की टाप और फौजी लारियों से तहस-नहस कर दी गई। युवक किसानों की बैठकें और उनके संघ ग़ैरक़ानूनी करार दे दिए गए, बात-बात में लाठी-चार्ज और डंडा-चार्ज, लोगों को उठते लात और बैठते घूँसा मिलने लगा। चार से ज्यादा आत्मियों का एक साथ बैठना जुर्म हो गया। आपस में ख़याल तब्दील करना मुश्किल हुआ, तब और अशांति बढ़ी। लड़कों के व्यायामशाला और मनोविनोद की आतिशबाज़ी बनाने के मुक़ामों पर भी सरकारी पहरा बैठ गया।

(५)

जितने प्रकार के भी दमन-चक्र थे, उन्हें चलाया गया। किसानों को जिस प्रकार भी हो सका उकसाया गया, जिसमें यह कहने को हो जाय कि उनके हिंसक हो जाने से ही राजा को गोली चलवानी पड़ी। जगह-जगह और बात-बात में किसानों की बहू-बेटियों का अपमान किया जाता। गली-कूचों में फौजी सिपाही मादरज़ाद नंगे खड़े हो जाते, जिससे औरतों का ज़रूरियात के लिये भी घर से बाहर निकलना मुश्किल हो जाता। राह चलते किसान-युवतियों के सिर की दही और मठे की मटकियाँ जबरन उतार राजा के लोग उनसे मज़ाक और बलात्कार करते।

इतने पर भी किसान मनसा, वाचा और कर्मणा अहिंसा-त्मक रहे। मुंशीजी की शिक्षा थी, हम किसी व्यक्ति से विरोध नहीं कर सकते। हमें तो सिर्फ उसके दुष्कर्मों का मुकाबला करना है। हम अपनी ओर से किसी का भी बुरा नहीं चाह सकते। यह बात दूसरी है, हम सताने में किसी को कुछ तकलीफ उठानी पड़े। यद्यपि यह है असंभव ही, फिर भी यदि मान लें कि मनुष्य का संहार कर सुख-शांति स्थापित हो जायगी, तो उसका उपभोग कौन करेगा।

तर्क मवालात करते, मूँगा, फूल और विश्वभर ने अनेक यातनाएँ भोगीं। फिर भी वे पथ-भ्रष्ट न किए जा सके। फूल अब संयम और सुंदरता से पूरा सत्रह बरस की हो चली थी। बद-दिमाग पुलिसवाले कुशिक्षित राजमद में उसका अछूता शरीर लातों रौंद देते। विश्वंभर अपने हृदय पर पत्थर रख लेता। कुछ ऊँचे पहाड़ी प्रदेश के नौजवान भी इन किसानों का साथ देने आ गए थे, बड़ी खूँखार क्रिस्म के थे, विश्वंभर इन्हें भी पूर्ण अहिंसात्मक रखने में कृतकाय हुआ।

आखिर एक दिन फूल और विश्वंभर का मुकदमा जेल में हुआ, जहाँ उन्हें अनियमित भोजनाच्छादन, अपरिचित स्थानों में अनिश्चित समय तक रहने की आज्ञा हुई, और कैदियों की किसी हकतलफ़ी पर दोनों को आमरण अनशन करना पड़ा। मूँगा और कमल को डोंग-कार्ट में भरकर दूर किसी जंगल में

छोड़ आया गया। चचाचाद भाई बहन एक किसान के घर रह गए।

मुंशीजी जेल में रहकर भी अपने को पूर्णरूपेण स्वतंत्र समझते, सदा प्रसन्न रहते। वे निरुत्साह कैदियों को ममकाया करते, जिस तरह छोटे-बड़े की भावना कुशिक्षा से आदमी के हृदय में घुस जाती है, उसी तरह स्वतंत्रता और परतंत्रता का अर्थ लोग गलत करने लगते हैं। मा बच्चे को दूध पिलाकर जिलाती है, यह सच है; लेकिन बच्चा भी तो उसे अपनी क्रीड़ा और मुस्कान से आह्लादित किया करता है। उससे उसे जीवन की जागरूकता में उत्साह मिलता है। मा उसे जिस्मानी खूराक देती है। वह उसे रूहानी ताकत देता है। दोनो का जब एक दूसरे से अन्योन्याश्रित संबंध है, तो कोई किसी से बड़ा-छोटा कैसा? मनुष्यत्व की कद्र करनेवाला न किसी को परतंत्र रखना चाहेगा, न खूद रहेगा। दूसरे की कैद का खयाल लाना ही अपने को खूद कैद करना है। आप एक बात गलत कहते हैं, हम उसे नहीं मानते। अगर हम नहीं मानते, तो फिर दुनिया में कोई ऐसी शय नहीं, जो उसे मनवाने के लिये हमें मजबूर कर सके। लोग पूछते, अगर ऐसा है, तो लोग हमें इतनी ज्यादातियों से मीज-मरोड़कर जेलों में क्यों ठूँसते चले जाते हैं। मुंशीजी बड़े उत्साह में उत्तर देते, यह दोनो ओर आदमीयत की कमी का सबूत है। जिस वक्त दोनो में से एक भी राह पर आ जायगा, इन जेलों और अस्लहों की जरूरत जाती

रहेगी। कोई गुस्ताख़ कैदी यह भी पूछ बैठते, “फिर मुंशीजी जेल में क्यों हैं? दूसरों के इशारों पर चलते-उठते और खाते-पीते हैं, पृछो तो, अपने को पूर्ण स्वतंत्र बतलाते हैं?” मुंशीजी निश्चित होकर कहते, मैं ख़द अगर जेल आना न चाहता, तो नहीं ही आता। अब भी यदि रहना न चाहूँ, तो फिर कौन मुझे यहाँ रोक सकता है। हमारी मंशा के खिलाफ़ कोई हमसे कुछ नहीं करा सकता। पर हालाँकि हम मनसा, वाचा और कर्मणा किसी को किसी बात के लिये भी मजबूर का ख़याल छोड़ दें।

छूटने की मीयाद में अभी एक साल से ऊपर था। ताहम मुंशीजी का स्वास्थ्य ख़राब जाने की वजह जेल के अधिकारी उन्हें जल्द रिहा कर देने की सिफ़ारिश सरकार से कर रहे थे। डॉक्टरों का ख़याल था, उन्होंने ज़रा भी आराम न देकर शरीर से दिन-रात काम लिया। इस कारण उन्हें आंत्रिक विकार हो गया, जो असाध्य था। मुंशीजी पर किसी के कहने-सुनने का कोई असर न पड़ता। वह जैसे सूखे सावन, उसी तरह भरे भादों रहा करते; वही मंद मुस्कान, रसी चेहरे की चमक पर लोग हमेशा ताज्जुब किया करते।

जेल के तबादिले में एक रेलवे जंक्शन पर, कुछ दिन पहले डॉक्टर नाथ भी मुल्जिम की हालत में मुंशीजी को मिले थे। बड़ी शान थी, बड़े रोब। उनकी गोदाम में बहुत-सा विस्फोटक पदार्थ और कई एक बग़ैर लाइसेंस के अस्त्र-शस्त्र

बरामद हुए थे, सख्त कैद काटकर आज घर जा रहे थे। साथ के पुलिसवालों को नथुनों चने चाबने पड़ रहे थे। खाना खिलाने को सब उन्हें चीता-सा पुचकार रहे थे।

मुंशीजी को डॉक्टर नाथ ने बहुत सख्त-सुस्त कहा। मुंशीजी ने 'न जीने की खुशी, न मरने का रंज' के भाव में मूँगा, फूल और विश्वंभर के कष्टों का हाल सुना। फूल और विश्वंभर का समाचार उन्हें बहुत पहले अखबारों में मिल चुका था। मूँगा और कमल के लापता होने की बात एक शख्स ने बतलाई थी। अब डॉक्टर नाथ से उनका ठीक-ठीक मुकाम मालूम हुआ।

(६)

डॉक्टर नाथ के जंगली साथियों ने जंगल में बहुत जल्द कमल और मूँगा को खोज निकाला। आवश्यक सेवा-शुश्रूषा करके उनके रहने का प्रबंध एक घाटी की गुफा में कर दिया गया। मुंशीजी ही की तरह मूँगा का शरीर भी शारीरिक और मानसिक कष्टों में खूब कट-पिट गया था। जनता को भेड़-बकरियों की तरह खदेड़ा गया था। भभभड़ में कुचलकर ज़रा-से कमल का कोमल शरीर फोड़ा-सा दुखने लगा था। इस बार की मार में मूँगा के कान बहरे हो गए थे। दाहना हाथ टूट गया था; मत्थे के ज़ख्म का नासूर बन गया था। मुकों में मुँह के बल गिरने से ज़बान कटकर लगने लगी थी। यद्यपि मुंशीजी की ही तरह वह भी मरने की तैयारी कर

रही थी, फिर भी डॉक्टर नाथ से सैद्धांतिक मतभेद पर उसकी आँखों में वही तेजी और चमक आ जाती, जो मुंशीजी की आँखों में ऐसे अवसरों पर हुआ करती ।

फूल और विश्वंभर की शहादत पर मूँगा को बड़ा संतोष था । कमल का पालन-पोषण जब से अध्यापिकाजी ने अपने हाथ में ले लिया था, तब से वह उनमे कहा करती कि बच्चे की हिंसक प्रवृत्तियाँ किसी प्रकार भी जाग्रत न की जायँ । मुंशीजी से प्रत्यक्ष में भेंट करने की उसकी कोई इच्छा न थी । फिर भी अध्यापिकाजी के मनोरंजनार्थ वह प्रायः कहा करती, अगर वे कहीं यह मेरा हुस्न देख पाएँ, तो पचासों के सामने मुझे जी भरकर प्यार कर लें । अध्यापिका हँस पड़ती, लेकिन कभी-कभी वह अपना विपाद-युक्त चेहरा आइने में देखने लगती । तब डॉक्टर नाथ भी टिप्पणी करते कहते, मुंशीजी का दांपत्य जीवन तो जरूर सुख-पूर्ण है । मूँगा के सत्साहस की चुटकियाँ लोगों के कायर मन की नसें खींचने लगती । गिलास टूटे हाथ से गिर पड़ता ; डॉक्टर नाथ कहकहा लगाकर हँसते । लेकिन वह उत्साह में कहती, 'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः' तो दुनियादार एक दूसरे का मुँह देखने लगते ।

मूँगा का भौतिक शरीर जितना ही नाकाबिल होता, सूक्ष्म उतना ही उससे विरक्त हो केंद्र की ओर सिमटता और सूक्ष्मतर होकर अधिक प्रकाश देता ।

अंतिम समय उसने मुंशीजी को एक पत्र लिखा । दाइना हाथ था ही नहीं ; बाएँ से लिखना बड़ा अटपटा था । इसलिये शरीर-भर का प्राण उसने उसमें भरा; अच्छर और लेख तरक्की करने लगे ; वह मुस्किराई । इसी तरह जीवन पर्यंत मुश्किल आसान करने में वह मुस्किरा दिया करती थी; सारा शरीर निर्जीव था । सिर्फ बायाँ हाथ अपनी सीमित शक्ति और समय का बड़ी मितव्ययिता से व्यय कर रहा था ; कर्तव्य पूरा करके वह भी बुझ गया ।

डॉक्टर नाथ उसी दिन मुंशीजी के पास जेल चले गए ।

डॉक्टर नाथ को मुंशीजी जेल के फाटक पर मिले । डॉक्टर ने अपनी विकट हँसी में कहा, “शायद अब आपको मरने ही के लिये जेल के बाहर कर दिया गया है ?”

मुंशीजी ने छूटते ही कहा—‘चिरंजीव हों; मैं आपकी याद ही कर रहा था ।’

इतनी भयानक प्रकृति के होते हुए भी डॉक्टर नाथ मुंशीजी के उत्साह और उल्लास पर सहम गए । एक मन तीस सेर का वज्रनी शरीर करीब बीस-बाईस सेर हड्डी और चमड़े की रेखाओं में सामने ग्वड़ा था । लेकिन वही भंकार ; वही पानी ।

डॉक्टर ने निष्ठुर होकर कहा—“आपकी स्त्री, कल रात, कुत्ते की मौत मर गई । पचासों जगह, अम्दन, बिला किसी एवज के उसने धरने या सत्याग्रह के नखरे में अपना जीवन

गारत कर दिया। जिसके नतीजे में कुल चौबीस साल छ महीने की लुभावनी उम्र में उसे दुनिया से तर्कमवालात करना पड़ा।”

मुंशीजी ने दरखत का सहारा लेकर कहा—“तो इसमें नई बात क्या हुई? उसूल के खिलाफ उसका साठ बरस तक जीना बेकार था। मेरी भी साँस किसी वक्त बंद हो सकती है। आप भी अमर नहीं हैं।”

मुंशीजी का हाथ अपने कंधे से लगाकर डॉक्टर उन्हें गली में लिवा लाए। मुँह में उँगली लगाकर उन्होंने एक अजीब जफ़ील बजाई। जिसके जवाब में एक छ सेलेंडर, रेसिंग मॉडल पैकार्ड मोटर आकर सामने खड़ी हो गई। दोनों उस पर बैठ गए। इश्वर को डॉक्टर ने कोई खास इशारा किया। जिससे वह पहाड़ी प्रदेश की ओर कुल स्पीड में भागा। मुंशीजी मूँगा का ख़त पढ़ने लगे; डॉक्टर नाथ चुरहू पीने लगे। मूँगा ने लिखा था—“मेरी समझ से यह तुम्हारे साथ की महिमा ही का फल है कि आ मैं इस शरीर का काम पूरा समझ, इसे निश्चित त्याग रही हूँ। तुम्हारी वसीयत मैंने पूरी कर दी है। तुम अपने मित्रों में कहा करते थे कि तुम्हारे भार को कोई दूसरी स्त्री वहन न कर सकती थी। मैंने किसी से कहा नहीं, लेकिन मैं समझती थी कि मेरा भी उलटा-सीधापन दुनिया में दूसरा खाविद नहीं सह सकता था। मैं जंगली थी, कुछ मर्दाना तबि-

यत की थी। केवल यही वजह थी कि मैं ब्याह करके पुरुष के सामन झुकना नहीं चाहती थी। तुमने अपने पुरुषत्व के द्वारा मुझे स्त्रीत्व के दर्शन करा दिए। मैंने तुम्हारे सत्संग का पूरा फायदा उठाया है। तुम्हारी गौर मौजूदगी में तुम्हारी शिक्षा हर समय मेरे साथ रही। मेरा खयाल है, तुमने मेरा विश्वास इतना किया कि मैंने अपनी कामनाओं को पूरा कर लिया।

“इसका मुझे आश्चर्य नहीं, तुमने कभी यह जानने की कोशिश न की कि कमल मेरे पास कहाँ से आया। इस वक़्त भी मैं सिर्फ़ कहने के लिये कह रही हूँ कि उसकी मा को शेरनी ने मार डाला था, और मैंने अंतर की पुकार पर उसे कुंती के कर्ण की तरह पाल लिया था। मुझे अपने कुमारीत्व में ही मातृत्व का खेल अच्छा लगता था। जो तुम्हारी पितृत्व की सद्भावनाओं के साथ मिलकर आज जीवन का सर्वोत्तम खेल बन गया। मैं निःसंतान होकर आज समस्त विश्व की संतान को अपनी समझकर मर रही हूँ।

“कमल आज सात साल का है, कभी तुम्हारा-सा हो जायगा।

“मैंने तुमसे, घर लुट जाने पर एक दिन, कहाँ रहने के लिये पूछा था। तुमने मनुष्य का स्थान विश्वंभर के नीचे और विश्वंभर के ऊपर बतलाया था। मुझे कितनी शांति मिली थी !

“मुझे पुनर्जन्म में विश्वास है।

मूंगा”

मुंशीजी ने पत्र समाप्त करके भोले में रख लिया। उन्हें इस वक्त एक संतोष हो रहा था, जो उन लोगों को होता है, जो विवाह को एक संस्कार और विवाहिता को अर्द्धांगिनी समझते हैं, ठीक मरनेवालों के लिये और ठीक जीनेवालों के लिये मुंशीजी कभी दुखी न होते थे।

मोटर एक पहाड़ी, घने जंगल के मुँह पर खड़ी हो गई। दो भंपान, सोलह कुली, कई दर्जन नवयुवक अध्यापिकाजी की अध्यक्षाता में इनका इंतजार कर रहे थे। दूर तक पहले हरी फिर सूखी पहाड़ी भूमि थी। मुंशीजी ने इस जलूस और भंपानों से इनकार कर दिया।

घने जंगल के कलेजे में एक बहुत साफ सुसज्जित बेत और गोदी की बनी हुई झोपड़ी थी, जिसकी सारी वस्तुएँ गुलदस्ते, पलंगपोश, मेज़पोश इत्यादि हाथ के बने और कते-बिने थे।

मुंशीजी पलंग पर लेटे थे। डॉक्टर नाथ बेत की आराम कुर्सी पर किसी कागज का, एक नक्शे से मिलान कर रहे थे। डॉक्टर ने मुंशीजी के चेहरे की ओर देख, स्वभाव-संचालित होकर कहा—“शायद अब इहजीवन-लीला समाप्त करना चाहते हैं?”

मुंशीजी ने मुख पर अंतिम प्रकाश भरते हुए कहा—
“आपको मुझसे कुछ और पूछना है।”

“नहीं” डॉक्टर नाथ ने तैश में आकर कहा—“आप से कुछ कहना बाक़ी रहा जाता था, वह भी कहे देता हूँ। देखिए, आप-

की शिक्षा आपके साथ दफन हो रही है, यह कहते मुझे खुशी है।”

मुंशीजी ने समत्व की भावना में भरकर कहा—“मनुष्य का काम मनुष्य को बहकाना नहीं। उस कारण जो रास्ता मुझे सही जँचता है, उसके खिलाफ राय देना मैं खिलाफ फर्ज समझता हूँ। जातीय और अंतरजातीय शांति में अगर तोपें, तलवारें कुछ कर सकतीं, तो अब तक कर चुकतीं।”

डॉक्टर नाथ ने विरोध में उबलकर भोपड़ी के इर्द-गिर्द जमा होती युवक और युवनियों की भीड़ में कहा—“आप गलत हैं, आप हमें बरगलाना चाहते हैं; आपके कहने से दुनिया कायर होना न पसंद करेगी।”

मुंशीजी बोलने का कष्ट अनुभव करते हुए बोले—“आप जब तक सच्चे वीर नहीं बनते, कायरता का अर्थ नहीं समझ सकते; निर्भय न होने से आत्मविश्वास नहीं होता। अपने पर विश्वास न करनेवाला किसी के विश्वास का अधिकारी नहीं। बस, यही एक सबसे बारीक गिरह है, जिसे हिंसावाद नहीं खोल सकता।” उन्होंने डॉक्टर को नब्दीक बुलाकर उनके कान में कहा—“आपको स्वयं अपनी बातों पर विश्वास नहीं। आप हमेशा दूसरों का उद्धार करने की चेष्टा में रहे हैं। मुझे कभी इस बात की चिंता न हुई कि आप मुझ-से क्यों नहीं होते। और, मेरे विचारों को बंदी बनाने के लिये आपने हमेशा अपनी भावनाओं को कैद रखा।”

भोपड़ी के चारो ओर बड़ी भीड़ हो गई थी । अनेक युवक और युवतियाँ, मुंशीजी के मुँह से बड़ी मुश्किल से निकलते शब्द, प्रवचन की तरह, मग्ध होकर सुन रहे थे ।

धरती के ध्रुवतारे



लेखक :

डा० प्रभुनारायण शर्मा, एम. ए., साहित्यरत्न

और

कृष्णकुमार शर्मा, एम. ए., साहित्यरत्न



कल्याणमल एण्ड सन्स

त्रिपोलिया बाजार, जयपुर-२

(सर्वाधिकार रक्षित हैं)

प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस पुस्तक के नोट्स एवं
सार छापने का किसी को भी कोई अधिकार नहीं है।

मूल्य २.००

मुद्रक : मोती प्रिन्टर्स, जयपुर-३

विषय-सूची

जनीति

- | | |
|--|----|
| १. बुन्देसे हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी । | १ |
| २. पुरुषसिंह-प्रताप | ६ |
| ३. वह विशाल छायामूर्ति | १६ |

शान्ति प्रचारक

- | | |
|-----------------------|----|
| ४. प्रकाश-पुंज-बुद्ध | २४ |
| ५. देवानां प्रिय अशोक | ३० |

शिक्षा

- | | |
|------------------------------|----|
| ६. महामना पं० मदनमोहन मालवीय | ३७ |
|------------------------------|----|

साहित्य

- | | |
|----------------------------------|----|
| ७. गुरुदेव-डॉ० रवीन्द्रनाथ टैगोर | ४६ |
| ८. लौह-लेखनी के घनी-चतुरसेन | ५३ |

वार्षिक

- | | |
|--------------------------------------|----|
| ९. जगद्गुरु शङ्कराचार्य | ६२ |
| १०. आस्था के अवतार-स्वामी विवेकानन्द | ६८ |

समाज-सेवा

- | | |
|------------------------|----|
| ११. आज का मामाशाह-बजाज | ७६ |
|------------------------|----|

वैज्ञानिक

- | | |
|-----------------------------|----|
| १२. डा० शान्तिस्वरूप भटनागर | ८४ |
|-----------------------------|----|

अपनी बात

“युग प्रवर्तक नरसिंहों का सम्पर्क देवी सम्पर्क होता है।”

ईश्वर संसार का सबसे बड़ा रहस्य है—ऐसा रहस्य जिसे लाख यत्न करने पर भी आज तक कोई नहीं समझ पाया ! मानव भी ईश्वर की सृष्टि में ऐसा ही प्राणी है जो ईश्वर का प्रतिनिधि कहा जा सकता है। ईश्वर जब प्रमिव्यक्त होता है तो मानव के रूप में। यही कारण है, मनुष्य मनुष्य के लिए रहस्य है, अध्ययन का विषय है।

शिक्षा यदि मानव के अध्ययन से रिक्त है तो अधूरी है। प्रस्तुत पुस्तक ‘घरती के ध्रुवतारे’ मानव के महामानव के चरित्र-अध्ययन द्वारा देश की शिक्षा को साग बनाने के लिए ही लिखी गई है।

आज समय के साथ साथ दृष्टिकोण बदल गया है, देश स्वतन्त्र है। स्वतन्त्र देश के लिए राष्ट्रीय चरित्र-निर्माण की बड़ी आवश्यकता है। जब तक हमारी शिक्षा में चरित्र-निर्माण की क्षमता न होगी देश के प्रति, नागरिक का दायित्व समझकर कर्तव्य करना संभव नहीं हो सकता है।

चरित्र-पठन से मानव जीवन में प्रकाश आता है, प्रेरणा मिलती है। पाठक स्वयं आदर्श मानव-चरित्रों से शिक्षा लेकर उन्हें अपने जीवन में उतार कर अपने मार्ग को निष्कण्टक बनाता है। जीवन-साहित्य में मानव की सफलता विफलताओं का ब्योरा और उसकी सघर्ष-क्षमता के चित्र देखकर पाठक में क्षय और कष्ट-सहिष्णुता अंकुरित हो जाती है।

जीवन-लेखन—कहानी-उपन्यास अथवा निबंध आदि से अधिक दायित्व की अपेक्षा रखने वाली एक अपने ढंग की कलाकृति है। कहानी-उपन्यास की काल्पनिकता के स्थान पर जीवन-लेखन में घटनात्मक तथ्यों का अधिक अवधान रखना पड़ता है, क्योंकि यह एक ऐसी कला है जिसके माध्यम से मनुष्य का भीतर-बाहिर का स्वरूप अर्थात् उसका व्यक्तित्व निरूपित किया जाता है।

‘घरती के ध्रुवतारे’ के चरित्रों को मोटे रूप से दो भागों में विभक्त किये जा सकते हैं—

(१) वे चरित्र जिन में जीवन की विशेष घटना या परिस्थितियों के कारण विकास हुआ है।

(२) वे चरित्र, जिनके जीवन में विचार की प्रधानता है।

प्रथमवर्ग के घटनात्मक चरित्रों में भासी की रानी लक्ष्मीबाई, पुरुष-सिंह-प्रताप, अशोक, आज का भामाशाह-वजाज आदि को स्थान दिया गया है। दूसरे वर्ग में श्री गङ्गूर, बुद्ध, स्वामी विवेकानन्द, महामना मदनमोहन मालवीय, रवीन्द्र, चतुरसेन और डा० शान्ति स्वरूप का समावेश करना उचित लगा है।

ये सभी चरित्र प्रायः अपने २ क्षेत्र के आदर्श हैं। पाठक के जीवन पर इनका अध्ययन चारों ओर से भिन्न २ विचारधाराओं का प्रभाव डालता है। अपनी-अपनी रुचि के अनुसार छात्र अपना आदर्श चुनकर अपना चरित्र-निर्माण कर सकते हैं, अपना लक्ष्य निर्धारित कर सकते हैं।

‘ध्रुवतारे’ की तरह अपने कर्तव्य पर अटल रहने वाले ये चरित्र महामानवों के वे आदर्श हैं जो ससार पर अपनी अमिट छाप छोड़ गये हैं।

रानी के त्याग को कौन भुला सकता है, प्रताप की कर्मठता के लिए कौन नत मस्तक न होगा, गांधी का कृतज्ञ होना किसे न रुचेगा, शान्तिदूत

बुद्ध और अशोक के संदेश क्यों न अनन्तकाल तक गूँजेंगे, महामना मदनमोहन मालवीय के विश्वविद्यालय को क्या हम भूल सकते हैं, उनकी देश-सेवाएँ कितनी बेलाग थीं, उनका त्याग और तपस्या कितनी आदर्श थी, क्या बताने की बात है ? रवीन्द्र और चतुरसेन की काव्य रचनाएँ कहां गौरवान्वित न होंगी, श्री शङ्कराचार्य और विवेकानन्द के विचार किसमें जीवन-संचार न कर देंगे जमनालाल बजाज के दान को तथा डा० शान्तिस्वरूप भटनागर के विज्ञान पाण्डित्य को कौन नमस्कार न करेगा ? ये चरित्र अपने गुणों के पीछे एक देश के ही नहीं विश्व की विभूतियों में प्रतिष्ठा पा चुके हैं । अतः सर्व वन्द्य है

हमें आशा है यह पुस्तक आज के भारतीय छात्र के चरित्र-निर्माण की दिशा में ध्रुवतारे के समान ही सहायक मिद्ध होगी । यदि हमारी यह आशा सफल हुई तो हमें अपने श्रम के प्रति संतोष होगा ।

—लेखक यन्म

बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी

सौ वर्षों की बात पुरानी, पर फिर भी नई आज वह रानी ।
कैसे न भाते राजा रानी, नानी कहती नित्य कहानी ॥
कौन ?

विशाल नेत्र, भौरे से काले चमकीले बाल, स्वर्ण सा रङ्ग और संपूर्ण मुख-मण्डल का अतीव आकर्षक डील, युवा अवस्था पर गौरव-गरिमा से परिपूर्ण एक गठीले शरीर वाली युवती एक तलघर में बैठी कुछ पास में बैठे व्यक्तियों से परामर्श कर रही थी ।

उसकी मुद्रा गुरु गम्भीर थी । लगता था उस पर कोई दायित्वभार ढल पड़ा हो । आज की उसकी वेश-भूषा-इंगुर की बिन्दी से शून्य ललाट, मुक्तकेशकलाप, श्वेत वस्त्र, परिमित आभूषण—बता रहे थे जैसे वह स्वयं तो अनाथ थी, पर दूसरे उसे पाकर ही मानो सनाथ थे ।

सन् १८५७ की बात है । आज की परामर्श-परिषद् में उसे देश का भाग्य निर्माण करना था । शताब्दियों तक चलने चलाने वाली कोई योजना बनानी थी ।

कौन जानता था उसका आज का यह छोटा सा सकल्प एक दिन देश का भाग्य निर्माण कर सकेगा । आज जिस कठोर कार्य को करने वह जा रही थी किसी दिन वह देश को गर्वोन्नत ग्रीव बना सकेगा ?

निर्णय हो गया । चूड़ी वाला हाथ खड्ग की मूठ पर जा पहुंचा । प्रचार के साधन जुटाए जाने लगे । मौन, पर सुदृढ ठोस कार्य प्रारम्भ हुआ । लोगों में आत्मोत्सर्ग की साध जाग उठी—देश में फिर से जीवन लहराने लगा ।

देश का कायाकल्प करने वाली, मृत्यु पर जीवन की छाया डालने वाली, स्वराज्य-संग्राम का शंखनाद करने वाली यह युवती और कोई नहीं स्वयं झांसी के दुर्ग की दुर्गा लक्ष्मीबाई थी ।

जन्म और विकास

‘सब दिन जात न एक समाना’ सच है बनी कब किसकी रही है। बिगड़ना और बनना जीवन के दो पहलू हैं। महारानी के पिता मोरोपन्त परिवार के दिन बदल गये—वे अपने भरण-पोषण की चिन्ता में व्यस्त रहने लगे। मोरोपन्त और भागीरथी देवी का एक मात्र विनोद साधन था उनकी नन्हीं सी बच्ची मनु का लाड-दुलार।

१८ नवम्बर, १८३५ को काशी के पवित्र धाम में इस वीरांगना का जन्म हुआ था। मोरोपन्त तांबै सतारा के समीप बाई गांव के निवासी थे। वे अपने मित्र बाजीराव पेशवा के छोटे भाई चीमाजी के साथ ही काशी वास करते थे, पर कराल काल उनके इस सुख को सहन न कर सका। वे जीवन-यापन तक को मोहताज हो गये। और साथ ही भागीरथी के समान ही निर्मल मनु की माता भागीरथी बाई का भी शरीरांत हो गया। मोरोपन्त अपनी इकलौती सन्तान मनु (आगे चलकर होने वाली झांसी की रानी) को लेकर पेशवा के पास विठूर ही आ गये। यही हमारी चरित्र नायिका का विकास प्रारम्भ हुआ था।

लक्ष्मी वीर थी, साहसी थी और साथ ही थी परिश्रमी भी। मोरोपन्त के अभाव के जीवन में मनु (लक्ष्मी) के कारण कोई कमी न रह गई थी। वे उसे देखकर जीते थे।

पत्नी की मृत्यु के पश्चात् मोरोपन्त ही लक्ष्मी के पिता थे तो वे ही उसकी माता भी। पालन-पोषण का भार मोरोपन्त पर ही आ पड़ा था। माँ की ममता ने मोरोपन्त के दायित्व को और भी गुरु से गुरुतर बना दिया था।

‘होनहार बिरवान के होत चीकने पात’ मनु के रहन-सहन और उसकी रुचि-प्रकृति देख-देखकर मोरोपन्त चिन्तित थे। घुड़सवारी, कसरत-कुश्ती, मलखम, छुरी-तलवार के दाव-पेच सीखने का उत्साह, बालकों के खेल में भी सेना संगठन-मुख्यतः नारी सेना संगठन, पुरुषों का सा अदम्य साहस और साथ ही ईश्वर विश्वास का गहरा रङ्ग—ये सब बातें थी जो मोरोपन्त को भीतर ही भीतर चिन्तित बनाये हुए थी। मोरोपन्त सोचते थे ऐसी होनहार बालिका के लिए वर और ठिकाना मिलना कठिन है।

योगायोग

एक दिन की बात है कोई ज्योतिषी पेशवा के दरबार में आ निकला। मोरोपंत को उत्साह हुआ और वे मनु के विषय में उनसे कुछ पूछताछ कर बैठे। ज्योतिषी ने जन्मपत्री देखकर कह ही तो दिया—“इस बालिका के राज-योग है, यह निश्चय ही कहीं की महारानी बनेगी।” मोरोपंत की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा, पर साथ ही मुस्कुराहट की श्वेत रेखा ने धीरे-धीरे अपने लय के साथ उनके चेहरे पर उदासी की काली रेखा खींच दी। सोचने लगे एक गरीब की कन्या को कौनसा राजा अपनाने को तैयार होगा ?

ललाट-रेखा

कुछ ही काल पश्चात् झांसी नरेश गङ्गाधरराव के साथ लक्ष्मीबाई का विवाह हो गया। लक्ष्मीबाई स्वभाव से ही कुछ नटखट थी। विवाह के गठबंधन की गांठ लगाते समय पुरोहितजी को कुछ कठिनाई सी पड़ती देख पहिले तो लक्ष्मीबाई ने स्वयं गांठ बांधने को हाथ बढ़ाया पर फिर कुछ सोच कर रुक गईं। भला उन्हें किसी कार्य में इतना बिलम्ब कब सह्य हो सकता था। यही कारण था कि वे अपने को सम्हाल न सकी और कह ही दिया—“पुरोहित जी ऐसी गांठ बांधना जो कभी न खुले।”

करालकाल

पर करालकाल किसी के सुख को बहुत कम सहन करता है। क्या पता था रानी जिस गांठ को कभी न खुलते देखना चाहती थी वह लगे-लगे ही खुल जायगी। १८५३ के २१ नवम्बर को अठाग्ह वर्ष की तरुणी लक्ष्मीबाई की मांग का श्रृङ्गार सदा के लिए लुट गया—गङ्गाधरराव की इहलौकिक लीला समाप्त हो गई।

सिक्के के दो पहलू

इधर रानी अपने माग्य पर आठ-आठ आँसू रो रही थी उधर जनरल एलिस शाही खजाने पर अङ्गरेजों की मोहर लगा रहा था। कल जो रानी का था आज पराया होने जा रहा था।

मेजर एलिस की सूचना पर अब झांसी की रक्षा के नाम से झांसी में अंग्रेजी सेनाओं का शिविर स्थापित हो गया था।

षड्यन्त्र

लार्ड डलहौजी की 'राज्य-हडप नीति' का बोलबाला था। जनरल राजनीतिक एजेण्ट मालकमहेली और गवर्नर जनरल तीनों का एक सूत्र था। रानी के दत्तक पुत्र को अवैध ठहरा कर रानी को पेंशन देकर झासी की शासन व्यवस्था गवर्नर जनरल के हाथों में सौंपने का कुचक्र लगाया गया। फलस्वरूप २ अगस्त सन् १८५४ को झासी राज्य अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया गया।

क्रान्ति की चिनगारी

जैसे-जैसे डलहौजी की 'राज्य-हडप नीति' पनपती गई एक के पश्चात् एक-दार्जिलिंग, अर्काट, सतारा, सम्ब्रलपुर, तजौर, खैरपुर-हडपे जाने लगे। नीचतापूर्ण कृत्यों के कारण अब जनता में असन्तोष का अंकुर जमने लगा। रानी ने भी अंग्रेजों की इस राज्य हडप नीति का भारत व्यापी दृष्टि से विरोध किया, किन्तु राजमद से बड़े हुए मद में उन्मत्त अंग्रेज अधिकारियों के कान तनिक भी न खडके।

पेशवा के मरने पर उनके दत्तक पुत्र रानी के बाल साथी नाना साहब आदि की भी पेशन बन्द कर दी गई। इसी समय सुना जाता है, गाय और सुथर की चर्बी के कारतूसों का प्रयोग हुआ। मुसलमान व सिपाहियों को उनको काम में लेने को बाध्य किया गया। वम, अति की भी सीमा होती है। चिनगारी ने जोर पकड़ा, क्रान्ति का बवडर उठ खड़ा हुआ।

महाराणी का दायित्व

लक्ष्मीबाई समझदार, स्वार्थ रहित और देशहित के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने वाली वीर महिला थीं। समय से लाभ उठाया। देश को सदा के लिए स्वतन्त्र करने का अवसर समझ उन्होंने देशव्यापी स्वतन्त्रता-संग्राम की योजना को कार्यान्वित करने का संकल्प किया। झासी क्रान्ति का मन्दिर बना, रानी क्रान्तिकारिणी चण्डी और उसके साथी जिनमें राव साहब नाना साहब, तार्यादीक्षित आदि के नाम अधिक उल्लेखनीय हैं, उसके पुजारी बने। बलिदान की भूख जागी। रानी ने फिर से झासी का शासन अपने हाथ में लिया। जगह-जगह २ घूम-घूम कर शान्ति की स्थापना की। देश में स्वतन्त्रता के प्रति पुनः एक बार लालसा उत्पन्न हो गई।

रानी की न्याय परायणता

जब जनता ने अंग्रेजों पर आक्रमण किया तो लक्ष्मीबाई ने उनको शरण दी। वे नहीं चाहती थी कि क्रांति अत्याचार और क्रूरता में बदले। वे चाहती थीं अत्याचारी समझसे कि अत्याचार करना बुरा है। परन्तु, दुर्भाग्य तो यह हुआ कि इस समय लक्ष्मीबाई को योग्य सहायक नहीं मिल पाये। और अंग्रेजों ने अपकार का बदला उपकार से दिया। रानी चाहे कितनी ही समझदार थी, पर थी रानी-स्त्री ही। दया और कोमलता को वे नहीं भुला सकती थी। पर प्रतिदान में अंग्रेजों ने उन्हें बागी कह सम्बोधन क्या किया एक भूखी बाधिन को छेड़ दिया।

संघर्ष

रानी के साथी ही जब अंग्रेजों से सन्धि का परामर्श करने को आतुर होने लगे तब रानी ने रक्त-क्रांति का सहारा लिया। जैसे ही चडी चेनी क्रांति का नकशा बदलने लगा, रानी ने करारे के मैदान में अंग्रेजों के सहायक झांसी के स्वयमन्य उत्तराधिकारी सदाशिव को हराकर करेरा का दुर्ग हस्तगत कर लिया।

झांसी आज सकट में थी। इसलिए रानी ने झांसी के सरदारों की एक सभा बुलाई। इस सभा में दीवान जवाहरसिंह के हाथ पर क्रांति दूत का कङ्कन बांधा गया। पुरानी तोपें मोर्चों पर डट गईं बुन्देले आन पर अड गये। 'रानी की जय' का एक नारा बुन्देले वीरों के रक्त में उबाल ले आने को रामबाण औषधि का काम करने लगा।

एक पर एक करके झांसी के शत्रु पकड़े व मारे जाने लगे। देश की स्वतन्त्रता का दायरा विशाल होने लगा। अंग्रेजों को भारत से भगा देने का संकल्प न लेना आज अपमानजनक समझा जाने लगा।

क्षमता

लक्ष्मीबाई में संगठन की बड़ी भारी क्षमता थी। अब उनका लक्ष्य देश की स्वतन्त्रता था। वे झांसी की स्वतन्त्रता को गौण समझने लगी थी। अंग्रेजों ने भी रानी को गहराई से अध्ययन किया। वे समझ गये कि अब 'फोडो और राज करो' नीति का ही आसरा सेना है नहीं तो रानी से बाजी सेना आसान नहीं होगा।

उधर सर ह्यूज बानपुर, सागर और शाहगढ जीतता झांसी की ओर

बढ़ता आ रहा था। इधर लक्ष्मीबाई जो भूखी मिहनी की भांति अपनी मराठा सेना को लेकर तैयार थी ह्यूज की सेना पर टूट पड़ी। घमासान युद्ध हुआ। गोलाबारी हुई। रानी के साथी तितर बितर हो गये। गोरी सेना आगे बढ़ी। झांसी के ओडछा फाटक के रक्षक देशद्रोही दूलाजी ने अंग्रेज सेना की सहायता की। विध्वंसकारी आक्रमण हुआ, पर रानी कालपी की ओर निकल गई।

लेफ्टिनेन्ट बौकर ने २१ मील तक रानी का पीछा किया। पर वह लक्ष्मीबाई को पकड़ न पाया। रानी कालपी पहुँची। कालपी पर इस समय राव साहब का अधिकार था और नाना साहब कानपुर में थे। जैसा कि पाठक जानते हैं, ये दोनों रानी के बाल साथी थे।

मिलन

पेशवाई दरबार में बिछड़े हुए देश प्रेमी फिर मिले। रानी ने रक्त-रञ्जित खड्ग निकाल कर राव साहब से कहा—“भाई साहब, यह खड्ग हमारी परीक्षा चाहती है, इसी ने हमारे पूर्वजों की रक्षा की थी, यही आज हमारी प्रतिष्ठा के साथ-साथ देश की स्वतन्त्रता का संरक्षण करेगी। आप वीर हैं, मैं इसे आपको सौंपती हूँ।” वीराङ्गना की इस चेतावनी से रावजी के हौसले बढ़ गये। उन्होंने कहा—‘हम तुम्हारे साथ थे, हैं और रहेंगे।’ यह कहकर राव साहब ने एक बार पुनः रानी की प्रशंसा करते हुए अंग्रेज सेना का संगठित प्रतिरोध करने की योजना बनाने का निर्णय किया।

तात्याटोपे (दीक्षित) बांदे के नवाब, रावजी और रानी ग्वालियर के निकट गोपालपुर में पहुँचे। अंग्रेज भी इनका पीछा करते हुए ग्वालियर की ओर बढ़े। जैसे ही गोरी सेना ने चढ़ाई की रानी ने भी शख् फूँव दिया। यह युद्ध भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का निर्णायक युद्ध था। रानी ने इसमें अद्भुत पराक्रम और शौर्य दिखलाया। रानी का ऐसा साहस देखकर दुःखी और मुसीबतों के बोझ से दबे हुए उनके सभी वीर साथी और सैनिक उत्साह से भर गये। अवसर पाने ही रावसाहब की सेना ने अंग्रेजी सेना पर धावा बोल दिया। अंग्रेजों की तोपें धुआधार आग उगलने लगी। वीर रावजी की सेना के पाँव उखड़ गये। इसी अवसर पर युद्ध नीति की पण्डिता महा-रानी लक्ष्मीबाई आगे पहुँचीं। युद्ध में जीवन आ गया पर आग उगलती तोपों के सामने चारा न चलता देख रानी ने सेना को दो भागों में विभक्त कर

दिया। अंग्रेज सैनिकों ने दूसरे ही क्षण अपने को शत्रु के चंगुल में फंसा पाया। वे घबड़ा गये। रानी को मार इतनी विकृत थी कि सैकड़ों अंग्रेज सैनिक मौत के घाट उतर गये। हजारों घायल हुए और अनेक मुँह में तिनका लेकर 'ब्राहि ब्राहि' कर उठे। दो दिन यह खूब पेशवाई सेना के पक्ष में रहा। तीसरे दिन पाया पलट गया। कुछ पुराने विश्वासघानी सैनिक अंग्रेजों से जा मिले। रानी चारों ओर से घिर गई। पर घबड़ाई नहीं। मुँह में घोड़े की लगाम दबा कर दोनों हाथों से दायें-बायें आगे-पीछे नलवार चलाते हुए रानी ने उस दिन जो युद्ध किया उसे देख कर अंग्रेज हक्के-बक्के रह गये। पर रानी ऐसी घिर चुकी थी कि नात्यादीक्षित उनकी सहायता कर पाया न बाँदा के नवाब और धानपुर के राजा। सर ह्यूज ने ऐसा मोर्चा बाँधा कि रानी के निकट कोई सहायक न पहुँच सका।

किसी तरह गुलमोहम्मद, रामचन्द्र राव देशमुख और रघुनार्थसिंह रानी के पास पहुँचने की चेष्टा करने लगे। इससे ह्यूज का ध्यान कुछ देर रानी ओर से हट गया। बस, अवसर मिलते ही रानी निकल गई। तीनों सहायक उसके पीछे हो गये। गोरे घुड़सवारों ने पीछा किया। मैदान का रङ्ग ही बदल गया। रानी को भी एक गोली किन्तु फिर भी वह बढ़ती ही गई।

होनी अटल

सामने एक नाश आ गया। महारानी का घोड़ा नया था जो उन्होंने ग्वालियर की अश्वशाला से छीना था। घोड़ा अड़ गया। इसी समय पुनः अंग्रेजों ने उन्हें आ घेरा। रानी के क्रोध की सीमा न रही। उसने घायल दशा में भी कई गोरो को मौत के घाट उतारा। उनका सारा शरीर छिन्न-भिन्न हो चुका था पर फिर भी वे लड़ती रही। इसी समय छिपकर एक गोरे ने उनके सिर पर खड्ग का वार किया। इसके साथ ही दूसरे गोरे ने उनके सीने के पास क्रिच घुमेड़ दी। रानी की यह दशा देख उनकी पीठरक्षिका काशी बाई ने जो रानी के साथ-साथ घोड़े को लगाये हुए भाग रही थी रानी के प्राणघातक गोरो के सिर धड़ से अलग कर दिए और रामचन्द्र देशमुख, रघुनार्थसिंह तथा गुलमोहम्मद को सकेंत दिया। वे झपटकर रानी के पास पहुँच गये। गोरे घबड़ाकर भागने लगे। इसी बीच रानी के साथी रानी को नाले के पार बाबा गङ्गादास की कुटिया में गये।

ज्येष्ठ शुक्ला ७ सं० १९१४ (सन् १८५७) को सायंकाल होते-होते रानी का पार्थिव शरीर अग्नि-ज्वालाओं को समर्पित कर दिया गया । रानी चली गई किन्तु उस वीरांगना के रक्त की बूंदों ने भारत वसुन्धरा पर जो इतिहास आलेखन कर दिया वह सदा अमिट रहेगा । वह देश को सदा संदेश देता रहेगा, वह उसके यश शरीर को सदा भारतीयों के मानस पट पर अङ्कित किये रहेगा ।

सचमुच रानी सहस्राब्दियों को प्रभावित करने वाली एक विभूति थीं । रानी का क्या हुआ, दिनों तक अंग्रेज न जान पाये पर जब पता चला तो जनरल सर ह्यूज के मुँह से सहसा निकल पड़ा—“She was the best & the bravest of them all.”

महारानी अपने त्याग और बलिदान से देश को बहुत कुछ दे गई । संगठन, देशभक्ति, स्वतन्त्रता और स्वराज्य ये शब्द भारत में रानी की ही देन कही जाय तो अत्युक्ति नहीं है । रानी मरी नहीं अमर हो गई । वह इस देश के लोकजीवन में समा गई । किसान, मजदूर आज भी फाग और दादरों में उनके सम्बन्ध में अपना निजत्व प्रकट कर के भाग्य सराहते हैं और उनके हृदय “रानी तुम्हें याद रखेंगे चिरकृतज्ञ भारतवासी” इस अमर भावना से गुँज उठते ।

: २ :

पुरुष-सिंह-प्रताप

जीवन के अगणित वंभव को
वेश-मान पर कर बलिदान
भीषण कष्टों की माला को
माना जिसने शुचि वरदान
धन्य-धन्य राणा प्रताप वह
राजस्थानी वीर महान् ।

—कुमार

राजस्थान की रेताली भूमि का कण-कण उस महान् स्वदेशभक्त की कहानी कहता है । एक-एक प्रस्तर-खण्ड में उसकी वीरता का मर्म निहित है । भारत के कोने-कोने में राजस्थान के वीर प्रताप की वीरता की कहानियाँ कही जाती हैं । राजस्थान के राजाओं में महाराणा प्रताप ही वास्तव में राणा कहलाने योग्य हैं—राणा ने विलास-वंभव को तृणवत् त्याग दिया—जीवन के समस्त सुओं पर ठोकर मारदी, अपनी और देश की मान-रक्षा के लिये वनों में घूमते रहे, जंगली फलों से क्षुधा मिटाते रहे, परन्तु अकबर के आगे शीश न झुकाया ! संसार में प्रलोभनों को जीतने वाला मनुष्य ही महान् कहलाता है—अकबर ने अनेक प्रलोभन दिए—साम, दाम, दण्ड और भेद सभी नीतियों का प्रयोग किया, परन्तु मेवाड़-केसरी महाराणा प्रताप को अपने आगे नत न कर सका ।

अवतरण

राणा प्रताप राजस्थान का मूर्तिमान वीरत्व है—विशाल शरीर पर चौड़ा मस्तक, लौह निर्मित शिरस्त्राण तथा कवच, दीर्घकाय भाले का चमकता हुआ फाल, गर्व और वीरत्व से भरे विशाल नेत्र, सब कुछ मिलाकर ऐसा मव्य है जो दर्शक के मन में गौरव, आत्मविश्वास तथा साहस भर देता है ।

वीरता, राणा प्रताप की पैतृक सम्पत्ति थी, वे प्रसिद्ध राणा संग्राम सिंह के पौत्र तथा राणा उदयसिंह के पुत्र थे। धन्य है ज्येष्ठ सुदी ३ सं० १५९७ की वह घड़ी जब राजस्थान के गौरव ने जन्म लिया। भारतीय इतिहास में वह दिन स्वर्णाक्षरो में लिखा गया। ज्येष्ठ का सूर्य भानों उस दिन प्रताप के ताप से ही ज्योतिर्ग होकर दिप रहा था—तप रहा था। राजस्थानी मटियाली रेत का कण-कण इस प्रखर प्रभा में स्नान कर ऐसा चमक रहा था मानो प्रताप के जन्म की प्रसन्नता में दिन में ही दीपमालिका मना रहा हो।

मातृ-भूमि के रक्षक

राणा प्रताप के पिता उदयसिंह अपनी दूसरी रानी में अधिक अनुरक्त थे। अतः उन्होंने, प्रताप को राज्य का उचित अधिकारी होने पर भी राज्य-पद से वंचित कर दिया और प्रिय रानी के पुत्र जयमल को राणा बनाया। प्रताप के गुणों से प्रजा परिचित थी, मुगलों के कारण आसन्न विपत्ति को सब समझ रहे थे। ऐसी दशा में राज्य का अयोग्य जयमल के हाथों में होना, देश की प्रतिष्ठा का खतरे में होना था, 'तब ? गुणग्राहक सामन्तों ने जयमल को गद्दी से उतार कर राणा प्रताप को अभिषिक्त किया। मातृभूमि अपने सच्चे लाल को पाकर गौरवान्वित हुई। राणा राजा नहीं थे, मातृभूमि के रक्षक थे सेवक थे।

अनुज-निष्कासन

राणा प्रतापसिंह के अनुज शक्ति स्वरूप, शक्तिसिंह थे, बड़ा प्रेम था परदार, एक दिन दैव दुर्विपाक से मृगया के लिए गए। एक मृत पर दोनों ने साथ-साथ तीर चलाए—मृग गिर पड़ा, प्रताप बोले—“देखो शक्ति मेरा बाण कितना अच्छा है”—शक्ति ने कहा—“बाण मेरा है, आपका नहीं।” विवाद बढ़ गया, तलवारें निकल पड़ीं, राज्य पुरोहित, जो वहां था, बीच में आगया। ब्राह्मण का रक्तपात देखकर दोनों का क्रोध शान्त हो गया, परन्तु राणा ने ब्रह्म हत्या का कारण अपने अनुज शक्तिसिंह को माना तथा उसे देश से निष्कासित किया। शक्तिसिंह अपमानित होकर अकबर के आश्रय में चला गया। वीरता की पूजा तो प्रत्येक स्थान पर होती है। शक्तिसिंह का अकबर ने आदर किया।

संघर्ष का आरम्भ

राजस्थान के अन्य राजाओं ने अकबर का आधिपत्य स्वीकार कर

लिया, यही नहीं, अपनी पुत्रियों और बहिनों के विवाह भी अकबर से कर दिए, ऐसा कर वे अपने को उपकृत समझने लगे। परन्तु, समस्त राजस्थान में पिसोदियाकुल-कमल वास्तव में पवित्रता के कमल की भाँति कलङ्क कालिमा के ऊपर मस्तक उठाए खड़ा था। ईर्ष्या का फणी अन्य राजाओं के हृदय में जाग उठा—राणा को कलङ्कित करने के अनेक उपाय किए जाने लगे। जयपुर के राजा भगवानदास ने अपनी कन्या का विवाह अकबर से कर दिया। इस प्रकार उनके दत्तक पुत्र भी अकबर के साले हो गये। अकबर ने मानसिंह की रणकुशलता का अपूर्व लाभ उठाया। मानसिंह ने अनेक दुर्जय रण अकबर के लिए जीते। राणाप्रताप मुगलों के इस बढ़ते हुए प्रभाव को देख रहे थे, वे भी अपने किलों को सुदृढ़ बना रहे थे क्योंकि मुगलों की इस बढ़ती शक्ति से उनका संघर्ष करना आवश्यक ही था। राजपूतों को अकबर वश में कर रहा था, वह चाहता था महाराणा प्रताप को भी अपने वश में करे। अतः उसने मानसिंह को भेजा। राणा ने मानसिंह का स्वागत किया, परन्तु भोजन के समय वे स्वयं न आये, अपने पुत्र अमरसिंह को ही भेजा। मानसिंह समझ गये कि उनके मुगलों के सम्पर्क में आने के कारण प्रताप इन्हें अपवित्र समझते हैं। मानसिंह बिना भोजन किये चले गए। क्रोध से उनका हृदय उफन रहा था। अकबर, अपनी नीति पर स्वयं प्रमत्त था—लोहे से लोहे को टकरा चुका था, अब बिनगारियां देखना ही शेष था। बहुत बड़ी सेना को साथ लेकर अकबर ने मानसिंह को ही भेजा। मानसिंह सेना लेकर माडलगढ़ पहुँचा।

हल्दीघाटी

खमणोर के निकट एक पर्वतीय घाटी में—जिसकी निदी पीली है—हल्दी सी—इसीलिए हल्दीघाटी कहलाती है। मानसिंह और स्वतन्त्रता के दीवाने, देशभक्ति के मद से मस्त राणाप्रताप और उनके साथियों का नामना हुआ। एक ओर असह्य, पर कुछ चाँदी के टुकड़ों पर चलने वाले मुगल तथा दूसरी ओर धन और मान पर लात मारने वाले राजपूत। ३१ मई सन् १५७६ का प्रभात न जाने नक्षत्रों के किस योग को लिए उदय हुआ था, आज का जो दृश्य—उस घाटी के पत्थरों ने जो देखा, वैसा उसने पूर्व न देखा था। वे प्रस्तरखण्ड उस बलिदान के साक्षी बन गए जो उस दिन वहाँ हुआ

था। वायु ने घूम-घूमकर वहां स्वतन्त्रता की पुकार भर दी थी। घोड़ों की टापों की ध्वनि से समस्त प्रान्त गूँज उठा था। हल्दी सी पीली मिट्टी रक्त से लाल हो उठी थी मानों सूर्य देव ने अपनी किरण रूपी पिचकारियों से रक्त की होली खेली थी परन्तु, सूर्य देव ! अपने वंश के रक्त से स्वयं होली ? यह कैसी बिडम्बना ! भयंकर शत्रुदल के बीच प्रविष्ट हो राणा ने शत्रु का पीछा किया। वे क्रोधित सिंह की भांति मानसिंह को खोज रहे थे। उस मानसिंह को जो स्वयं उनकी स्वतन्त्रता का हरण करना चाहता था। न जाने कितने शत्रुओं को मौत की सुखकारी निद्रा में सुलाकर राणा ने अपने प्रतिद्वन्दी मानसिंह को देखा—गज पर आरूढ़—सैन्य सञ्चालन करता हुआ—पर यह क्या ? राणा की आंखों से चिनगारियां निकलने लगी—भुजाएँ फड़क उठी—आह ! उनका रूप उस समय साक्षात् वीर रसके देवता भगवान् शङ्कर सा देदिप्यमान था। उनका अश्व चेतक मानों उनकी मन की इच्छा को समझ गया। मन के ही वेग से वह चला, विद्युत् की भांति उछला और उसके अगले दोनों पैर मानसिंह के गज के मस्तक पर थे—भयंकर कुन्त भी मानो सजीव होकर अपने स्वामी प्रताप के प्रताप को दिखला देना चाहता था। कुन्त का फल सूर्य की किरणों में विद्युत् सा प्रकाशित हो उठा। राणा ने पूर्ण शक्ति से कुन्त चलाया—मानसिंह का भाग्य प्रबल था, वह किसी प्रकार बच गया, पर महावत, वह उसी क्षण बिन्ध कर मर गया। सेना अस्त-व्यस्त होगई। राणा गोगूँदा के किले की ओर चल पड़े।

अपूर्व मिलन

राणा घायल होगये। उनका अश्व भी घायल था। रक्तस्राव हो रहा था, तब भी स्वामी को सुरक्षित स्थान में पहुंचाने की भावना से वह अश्व अपने प्राणों की बाजी लगाकर जा रहा था। राणा के पीछे दो मुगलों के अश्व थे जो उन्हें मारना चाहते थे। क्रमशः राणा और मुगलों के बीच की दूरी कम होती जा रही थी। रूठा हुआ भाई शक्तिसिंह भी मानसिंह के साथ युद्ध-क्षेत्र में आया था, उसने युद्ध में राणा का पराक्रम देखा, राणा की आंखों में देश के प्रति अनुराग देखा इसके फलस्वरूप उसके हृदय में घोर लज्जा उत्पन्न हुई। राणा से मिलने शक्तिसिंह चल पड़ा। उसने दूर से देखा राणा का—उसके बड़े भाई का—मेवाड़ के गौरव का अंत करने के लिए दो मुगल पीछा

कर रहे हैं। राणा अकेले पड़ गए हैं, थकित हैं, क्या राजस्थान का गौरव अस्त होगा ? नहीं, शक्तिसिंह का रक्त खौल उठा, अपने रक्त को कण्ठ में देख शक्तिसिंह का रक्त पुकार उठा। वह पवन वेग से चल पड़ा, उन मुगलों के पीछे। अकेले शक्तिसिंह ने उन दोनों को घराशायी कर दिया। अब वह अपने माई से मिलने चल पड़ा—‘ओ नीला घोड़ा रा असवार।’ राणा चौंके ! यह क्या अपनी मातृ भाषा में किसने पुकारा ? लौट कर देखा—अपना माई पर क्या वह युद्ध के लिये आ रहा है। ठहर गए—विधमियों की अपेक्षा माई के हाथ से ही मरना उचित है। परन्तु यह क्या ? शक्तिसिंह तो क्रुद पड़ा—राणा के चरणों में शीश झुका दिया—राणा बोल न सके, गला भ्रम आया, दोनों भाइयों के अश्रुजल ने वर्षों का मैल बहा दिया, हृदय निर्मल होगए। चेतक—वह अन्तिम श्वास ले रहा था। दोनों भाइयों के इस मिलन को देखकर मानो वह भी संतुष्ट था। राणा चेतक की यह अवस्था देखकर पागल हो उठे। जिसने मानसिंह के गज के मस्तक पर पद-प्रहार किया, जो प्रताप के प्रताप का साथी था। उसी अश्व, प्रिय चेतक का अंत देखकर प्रताप विकल हो गए। धन्य है चेतक, स्वामी की गोद में सिर रखकर सदा के लिए सो गया। शक्तिसिंह अपना घोड़ा राणा प्रताप को देकर लौट गये—दुःखी मन से। यह था यह अपूर्व मिलन, दो हृदयों का, दो भाइयों का, दो शरीरों में प्रवाहित एक ही रक्त का।

शाहबाज खाँ

दूसरी बार राणा प्रताप को अधिकार में करने के लिये अकबर ने शाहबाजखाँ को भेजा—महाराणा को पर्वत उपत्यकाओं में आश्रय लेना पड़ा। कुम्भलगढ का किला राणा के हाथ से निकल गया। राणा को बन्दी बनाने के शहबाज ने अनेक प्रयत्न किए परन्तु वह असफल रहा। राणा किसी भी पर्वत की ओर से उसकी सेना पर टूट पड़ते थे और पुनः पर्वत में लुप्त हो जाते थे। शहबाज निराश होकर लौट गया।

परीक्षा

बीहड़ वन प्रांत-जंगली पशुओं की चीत्कार से भयानक बनी हुई रात्रियाँ। छोटे-छोटे बच्चों के साथ राणा दिन काट रहे थे। खाद्य सामग्री अब अधिशेष न थी। शुष्क तृणों को पीस कर राणा की पत्नी ने रोटी बनाई बालक खाने वाला ही था कि जंगल में झाड़ी से निकल कर एक बिलाव वह

भी छीन ले गया। बालक बिलख उठा, पिता का हृदय टूक टूक हो गया—ये छोटे छोटे बच्चे और क्षुधा से व्याकुल। उधर राणा की पुत्री क्षुधा के मारे प्राण दे रही थी। राणा से यह दुःख न देखा गया—सोचने लगे, क्यों न अकबर की आधीनता स्वीकार कर जीवन के सुखों को प्राप्त करूँ—और इस आशय की एक पत्रिका अकबर के पास भेज भी दी। अकबर के दरबार में पृथ्वीराज थे—अकबर के कहने पर कि “देखो राणा प्रताप भी अन्त में झुक गए” उन्होंने कहा—“सूर्य अपना स्थान त्याग सकता है पर राणा ऐसा नहीं कर सकते और उन्होंने राणा को पत्र लिखा। राणा का स्वाभिमान जाग उठा—उन्होंने अपने को धिक्कारा इस नीच विचार के लिए और स्वाधीनता का ध्वज पुनः फहरा दिया। उनके शत्रु से स्वतन्त्रता की पुकार पुनः गूँज उठी। राणा परीक्षा में सफल हुए अच्छे-अच्छे वीर ऐसी अवस्था में साहस खो बैठते हैं, अपना स्वाभिमान बेच देते हैं—प्राणों के मोह में अपना धर्म भी बेच देते हैं, परन्तु वीर राणा पर्वत की भाँति अचल रहे, उन्होंने मान को सर्वोपरि समझा, देश की स्वतन्त्रता को सबसे अधिक महत्व दिया। धन वैभव संसार में क्षणभंगुर है, सब नष्ट होते हैं परन्तु मनुष्य का स्वाभिमान तथा बलिदान उसे अमर बना देते हैं। राणा प्रताप ने अपने परिवार को मरते देखा—स्वयं उपवास किए, अनेक कष्ट सहें पर स्वाधीनता की देवी पर अर्घ्य चढ़ाते ही रहे—यही कारण है राणा आज भी अमर हैं, और उनका स्मरण कर हम गौरव से भर उठते हैं।

अस्त या उदय

अकबर प्रयत्न कर हार गया परन्तु, राणा को अपने वश में न कर सका। राणा अपने अन्तिम दिनों में असंतुष्ट थे। इस असंतुष्टता का कारण था उनका बड़ा पुत्र अमरसिंह। अमरसिंह विलासी था, वह स्वाधीनता के लिए कष्ट नहीं सह सकता था। राणा को विश्वास था कि उनका पुत्र इस कठिनाई से अर्जित स्वाधीनता की रक्षा न कर सकेगा, वह अपने व्यक्तिगत सुख के लिए देश की स्वतन्त्रता को नष्ट कर देगा।

राणा के स्वतन्त्रता के प्रेमी प्राण, देश की इस भावी अवस्था का विचार कर विकल हो रहे थे। शरीर पिंजर को छोड़कर प्यासा पक्षी निकल नहीं रहा था। शरीर और मन दोनों ही पीड़ित थे। राणा ने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक वे मातृभूमि को पूर्ण रूप से स्वतन्त्र न कर लेंगे—बिलासी

जीवन न व्यतीत करेंगे, भूमि पर शयन करेंगे एवं साधारण भोजन पर जीवन व्यतीत करेंगे । उनकी इच्छा आंशिक रूप से ही पूर्ण हुई ।

तूरणों की मृत्यु शय्या पर पड़े हुए राणा का मन दुःखी था—देश का क्या होगा ? यही विचार उनके मानस में बार बार उठ रहा था । उनके एक साथी ने पूछा—“महाराणा आपको कष्ट क्या हैं ?”—और राणा की वाणी पीड़ा से फूट पड़ी—बोले, “मुझे अपना कष्ट नहीं मातृभूमि के भविष्य की चिन्ता व्यथा है, अमरसिंह विलासी है, वह स्वभूमि के हेतु कष्ट नहीं उठा सकता—अब देश का क्या होगा ।” साथी राणा की व्यथा समझ गए । सभी ने अपनी तलवारों को उठाकर शपथ ली कि वे प्राण रहते देश की रक्षा करेंगे । राणा के चित्त को शांति मिली और उनके प्राण पार्थिव शरीर को त्याग गये । राणा प्रताप का पार्थिव शरीर नष्ट हो गया पर वे अमर हो गये । भारतीय इतिहास के पृष्ठों पर उनका चरित्र अमर होकर अंकित हो गया । उनका नाममात्र हम भारतीयों के मन में गौरव की स्फूर्ति भर देता है । अतः हम इसे महाराणा का अस्त न कहकर उदय ही कहे तो असंगत न होगा ।



: ३ :

वह विशाल आयामूर्ति

“युग-प्रवर्तक महात्मा गांधी जन्मजात राजनीतिज्ञ नहीं थे। वे तो सामाजिक पुरुष थे। यह तो परिस्थितियाँ थीं जिन्होंने महात्मा गांधी को राजनैतिक क्षेत्र में आने के लिए बाध्य किया।

—रोम्या रोलॉ

रोम्या रोलॉ का उपरोक्त कथन महात्मा गांधी के अग्रिम विकास का स्वतः सूचक है। एक छोटा सा, दुबला-पतला, कृशकाय मनुष्य, जिसमें कोई विशेष ध्यान देने वाली बात नहीं दिखती—न केवल भारत का ही, वरन् अन्तराष्ट्रीय ख्याति का सेनानी है।

संभवतः विश्व के चित्रपट पर २ अक्टूबर १८६६ तथा ३० जनवरी १९४८ की तिथियाँ सदैव चिर-स्मरणीय रहेंगी। ये वे दिन हैं जब कि संसार के विभिन्न राष्ट्रों को एक ऐसा सदेश प्राप्त हुआ जो कि व्यवहारिक जगत में इतना आसानी से प्राप्त होना सम्भव दिखाई नहीं देता।

२ अक्टूबर, वह भाग्यवान दिन है जिसने गांधी के ७६ हेमन्त देखे। यह छोटी सी सख्या मानव इतिहास में उस समय तक याद रखी जावेगी जब तक की आज का भौतिक संसार अपने आबागमन के सिद्धान्त को समाप्त न कर ले। ता० ३० जनवरी, वह दिन है जब भारतीय संस्कृति को कलुषित करने वाले एक भारतीय ने ही, भारत के मुख पर कालिख पोत कर संसार के सम्मुख एक ऐसा दृष्टान्त उपस्थित किया, जिसका कि अन्यत्र उदाहरण मिलना असम्भव है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में :—

हरे राम कैसे हम झेलें,
 अपनी लज्जा उनका शोक ।
 अपने ही हाथों से हमने,
 भेजा राष्ट्रपिता परलोक ॥

मोहन दास कर्मचन्द गांधी का जन्म २ अक्तूबर १८६९ को गुजरात प्रान्त के पोरबन्दर गांव में हुआ था । “गांधी” नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि गांधी वंश का व्यवसाय इत्र अथवा पंसारि वर्ग से रहा होगा, परन्तु वास्तविकता यह है कि महात्मा जी के पितामह श्री उत्तमचन्द गांधी काठियावाड़ में पोरबन्दर रियासत के दीवान थे ।

बालपन और शिक्षा

महात्मा गांधी के पिता जब पोरबन्दर से राजकोट गए, तो उस समय इनकी आयु केवल ७ वर्ष थी । वे एक देहाती पाठशाला में शिक्षा ग्रहण कर रहे थे । शिक्षा क्षेत्र में इनकी योग्यता से स्वयं इनके अध्यापक ही चकित थे । माता-पिता के अच्छे संस्कारों का प्रभाव यह हुआ कि झूठ बोलने आदि का दुर्गुण कभी इनमें नहीं आया । “अच्छे उद्देश्य की प्राप्ति के लिए साधन भी अच्छे ही होने चाहिये” यह ध्येय महात्मा गांधी प्रारम्भ में ही निश्चित कर चुके थे, जिसके लिए उन्होंने अपने जीवन भर कराल साधना की ।

किसी विचारक ने लिखा था, “संसार अपने महापुरुषों के विषय में कुछ नहीं जानता ।” यद्यपि यह कुछ अप्रिय सत्य अवश्य है, परन्तु वास्तविकता भी यही है । मैट्रिक पास करने के हेतु ४ सितम्बर १८८८ को मोहनदास ने बम्बई से विलायत के लिए प्रस्थान किया । अपने अभिभावकों को स्पष्ट रूप से आश्वासन दिया, कि वे नारी संसर्ग एवं मांसाहार से दूर रहेंगे । महात्मा गांधी ने विलायत में भी काफी सादा जीवनयापन किया । भोजन, वस्त्र, किराया भाड़ा, समाचार पत्र, पुस्तकों तथा पत्रादि के व्यय का ठीक-ठीक हिसाब लिखकर रात्रि को अपनी पूंजी का हिसाब लगाना उनकी दिनचर्या का एक अङ्ग था ।

सादा जीवन यापन और मन-परिवर्तन की प्रवृत्ति पर बख़्शेकर ६ नवम्बर १८८८ को गांधीजी इन्नर टेम्पल में भरती हुए और १८९० को

मैट्रिक परीक्षा पास की। साथ ही साथ फ्रेंच, लेटिन, कामन ला, रोमन ला और अंग्रेजी भाषा में दक्षता प्राप्त की। अन्तिम परीक्षा पास करके १० जून, १८९१ को बैरिस्टर हो गए और ११ जून १८९१ को इंग्लैंड के हाईकोर्ट में नाम रजिस्टर करा कर भारत के लिए रवाना हुए। इंग्लैंड में अधिक ठहरने की उनकी तनिक भी इच्छा नहीं हुई।

समस्या काल

भारत पहुंचने पर उन्हें ज्येष्ठ भ्राता ने उनकी माता के देहांत की सूचना दी, परन्तु महात्मा जी ने अपने मनोभावों पर विजय प्राप्त की तथा अपने को संतुलित बनाये रखा। उन्होंने वकालत करना प्रारम्भ किया परन्तु अपने क्षेपू स्वभाव के कारण अधिक सफलता प्राप्त नहीं कर सके। इसी बीच एक मुक्किल ने उन्हें पैरवी के लिए दक्षिणी अफ्रीका भेजा। अफ्रीका पहुंच कर उन्होंने अपने प्रभाव का उपयोग कर मुकदमों का प्रसन्नतापूर्वक निबटारा करवा दिया, परन्तु नेपाल में भारतीयों की दुर्दशा देखकर उनका हृदय रो उठा। यह सर्वप्रथम अवसर था जब कि महात्मा गांधी का ध्यान राजनीतिक क्षेत्र की ओर आकर्षित हुआ।

भारत लौट कर महात्मा गांधी ने भारतीयों की दुर्दशा को सुधारने को ध्यान दिया और चम्पारन (बिहार) व खेड़ा (गुजरात) में किसानों की दुर्दशा सुधारने हेतु सत्याग्रह किया। सत्याग्रह का व्यापक व इच्छानुकूल प्रभाव पड़ा और किसानों पर होने वाले अत्याचारों का अन्त करा दिया। यह उनकी पहली विजय थी और इसके बाद तो उनका समस्त जीवन अंग्रेजों की स्वेच्छाचारिता से लड़ते र बीता।

सर्वर्ष

भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी को लाने का श्रेय रौलट एक्ट १९१८ नामक काला कानून एवं जलियां वाला बाग की घटना को है। प्रथम महात्मा गांधी ही वे दृढ़ प्रतिज्ञ नेता थे जिन्होंने व्यापक विरोध के बावजूद ब्रिटेन को पूर्ण सहायता प्रदान की थी, परन्तु युद्ध के पश्चात् भारत को दिये गये रौलट एक्ट रूपी पुरस्कार ने महात्मा गांधी को राजभक्त से राजद्रोही बना दिया।

१९१९ के जलियां वाला बाग की घटना तथा अन्य सामयिक घटनाओं ने महात्मा जी को क्षुब्ध कर दिया। परिणामस्वरूप १९२० के कलकत्ता

अभिवेशन में महात्मा गांधी ने जनता से असहयोग आन्दोलन को प्रारम्भ करने को कहा। छात्रों से कालेज छोड़ने, वकीलों से बकालात छोड़ने की मांग की। प्रारम्भ में आन्दोलन ने व्यापक सफलता प्राप्त की, परन्तु दुर्भाग्य से जोश में आकर कुछ लोगों ने चोरी नामक स्यात्त पर कुछ मनुष्यों को जीवित जला दिया। इस घटना से महात्मा गांधी को हादिक आघात पहुँचा और उन्होंने आन्दोलन को तत्काल स्थगित कर दिया। इस स्थगन की देश पर व्यापक प्रतिक्रिया हुई, परन्तु इससे नौकरशाही को सुअवसर प्राप्त हुआ और उसने अपना दमन-चक्र बेग गति से चालू किया। महात्मा गांधी को गिरफ्तार कर लिया गया और जज ने उन्हें ६ वर्ष का कारावास सुन दिया। इस सम्बन्ध में श्री जी. बी. मेहता ने अपनी पुस्तक "कांग्रेस आफ ए नेशन" में ठीक ही लिखा है—

गांधी का अपना अनुरोध स्वीकार करना ही वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था के दोषपूर्ण होने की घोषणा है। इसे देखकर लोगों के अन्तःकरण में यह बात उठती है कि जो समाज-व्यवस्था डायर के लिए पेन्शन का प्रबन्ध करती है और एक सन्त को ६ वर्ष के लिए बेल भेजकर उसका मुँह बन्द कर देती है उसके मूल में अवश्य ही कुछ दोष होगा।

सन् १९२२ के पश्चात् के कुछ वर्ष महात्माजी के योगाश्रम के दिवस कहे जा सकते हैं, जबकि वे कुछ समय के लिए राजनीतिक रङ्गमञ्च से हट गये। परन्तु देश की मांग के सम्मुख उनको फिर से राजनीतिक रङ्गमञ्च पर आने के लिए बाध्य होना पड़ा।

महात्मा गांधी ने अपनी शर्तों द्वारा वायसराय से कुछ सुधारों को कार्यान्वित करने की प्रार्थना की परन्तु कोई सन्तोषजनक परिणाम न निकलने के फलस्वरूप १२ मार्च १९२० को अपने ७९ प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं के साथ सविनय अवज्ञा आन्दोलन के अन्दर्गत दाँड़ी कूच प्रारम्भ किया।

देश भक्ति की ज्वाला पूरे प्रकाश के साथ प्रज्वलित हुई। उसने जनता को मातृभूमि की मुक्ति के संग्राम के लिए प्रस्तुत कर दिया। इधर आन्दोलन ने तीव्रता ग्रहण की और उधर ब्रिटिश सरकार ने दमनचक्र एवं कूटनीति का आश्रय लिया। कांग्रेस के चोदी के नेता गिरफ्तार कर लिए गए, परन्तु साथ ही कूटनीति का नया खेल खेलना भी प्रारम्भ हुआ। उन्होंने एक मोलमेज परिषद् का आयोजन किया, परन्तु बेलमोर्ग के शब्दों में, "सेफ्ट

जेम्स प्रसाद में राजा और अछूत, सिख, मुसलमान, हिन्दू और ईसाई, भूस्वामियों, श्रमिक-सङ्घों और वाणिज्य मण्डलों के प्रवक्ता एकत्रित हुए लेकिन भारतमाता वहाँ नहीं थी ।”

कुछ काल पश्चात् लार्ड इरविन ने भारतीय रूख को पहचानने की चेष्टा की और ५ मार्च १९३१ के गांधी इरविन समझौते के अन्तर्गत महात्मा गांधी ने द्वितीय गोलमेज परिषद (१९३१) में भाग लेना स्वीकार किया । इङ्ग्लैंड के इतिहास में यह पहिला अवसर था जब कि एक भारतीय, भारतीय पोशाक में, जेम्स प्रसाद में प्रवेश कर भारतीय सम्मान को उन्नत शिखर पर ले गया—परन्तु साम्प्रदायिक एवं जातीय कटुता के कारण गोलमेज परिषद सफलता प्राप्त नहीं कर सकी । अतः जैसी आशा थी, तृतीय गोलमेज परिषद (१९३२) भी नकारात्मक रूप में ही समाप्त हुई । १९१२ से १९३९ के छः वर्ष महात्माजी के त्याग, तपस्या और प्रचार के वर्ष थे, वैसे तो उन्होंने अपना संमस्त जीवन ही जनता जनार्दन की सेवा के लिए मेट कर दिया था ।

सन् १९३९ में महात्मा गांधी ने ब्रिटिश सरकार पर अपनी नीति में परिवर्तन करने के लिए अत्यन्त और डाला परस्तु नौकर शाही द्वारा स्वीकार न करने पर यह विचार उनके मस्तिष्क में स्थिर हो गया कि बिना पूर्ण स्वतन्त्रता के भारतीयों का हित नहीं हो सकता । अन्त में बाध्य होकर उन्होंने अपनी ऐतिहासिक घोषणा ८ अगस्त १९४२ को “भारत छोड़ो” के रूप में की । नौकरशाही ने इसके प्रत्युत्तर में दमन-चक्र का प्रथम लिया, जिसकी प्रतिक्रिया भी भयंकर ही हुई । महात्मा गांधी को पुनः गिरफ्तार कर लिया गया । जनता अपने ऐसे नेता की गिरफ्तारी को शान्ति के साथ मला कैसे देख सकती थी अतः जनता हिंसात्मक हो उठी और नौकरशाही को अपना दमनचक्र चलाने का स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ ।

महात्मा गांधी ने आगां खाँ-बेल से जनता के पागलपन और सरकार की नृशंसता को देखा । उनका मायुक हृदय सरकार की क्रूर नीति को देखकर विह्वल हो उठा । उन्होंने प्रायश्चित्त के रूप में अनशन की घोषणा की । स्वास्थ्य अनुकुल न होने के कारण ब्रिटिश सरकार ने उन्हें कारावास से क्षीघ्र ही मुक्त कर दिया । १९४२ के पश्चात् घटनाओं ने नाटकीय रूप धारण किया और मुस्लिमलीग ने पाकिस्तान की मांग का, उत्साहबर्धक समर्थन

किया। उस समय महात्मा गांधी कुछ कह सकने की स्थिति में नहीं थे। जिस एकता के लिए उन्होंने जीवन भर कराल साधना की मला उसी सिद्धान्त को वे बलिवेदी पर कैसे न्यौछावर कर सकते थे ?

कसौटी

इधर घटना चक्र बहुत तेजी से घूम रहा था। शिमला कांग्रेस जिन्ना की क्रूर चट्टान में टकरा कर चूर-चूर हो चुकी थी। स्वयं महात्माजी के ही शब्दों में “हम राजनीतिक गृह युद्ध के समीप जाते हुए प्रतीत हो रहे हैं।” भारत के इस स्वातन्त्र्य संग्राम के इतिहास में १६ अगस्त १९४६ का दिन अत्यन्त कलुषित दिनों में से है। मुस्लिम लीग ने चगेजखां और हलाकू की घटनाओं की पुनरावृत्ति की जो धमकिया दी थीं वे मूर्तरूप होती प्रतीत हो रही थी। कलकत्ता की भूमि पारस्परिक साम्प्रदायिक कटुता का गढ़ बन चुकी थी। भीषण हत्याचार, निर्मम हत्याएँ और लूट-वसोट आदि के बीच घूमते हुए महात्मा गांधी ने मृत व्यक्तियों के ढेर और अग्नि-ध्वस्त भवनों को देखा।

इस गामुहिक पाशविक संहार को देखकर उनका भावुक हृदय रो पड़ा। इसमें सुधार की आवश्यकता दिखलाई दी अतः उन्होंने इन साम्प्रदायिक दंगों की घोर निन्दा की। इन हृदय-विदारक दृश्यों से गांधीजी का द्रवित हृदय व्यथित और विदीर्ण हुआ जा रहा था। उन्होंने कहा—“इन दृश्यों को देखने से तो अच्छा यही है कि मेरे नेत्र सदा के लिए मुंद जाये।”

धीरे २ उनकी स्वाभाविक आकर्षण शक्ति ने लोगों को उनकी ओर उन्मुख किया। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि पाशविकता, हिंसा और क्रूरता पर सत्य, अहिंसा और प्रेम ने विजय प्राप्त की। इधर इंग्लैंड की राजनीति में भी परिवर्तन हुआ। अनुदार दलीय सरकार के स्थान पर मि० एटली के नेतृत्व में मजदूर दलीय सरकार बनी। प्रारम्भ से ही इस सरकार का दृष्टिकोण भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति सहानुभूतिपूर्ण था।

२० फरवरी १९४७ को मि० एटली ने भारत को जून सन् १९४८ तक स्वतन्त्रता प्रदान करने की घोषणा की, परन्तु परिस्थितियों से बाध्य होकर आगे चलकर यह तिथि चल कर १५ अगस्त १९४७ निश्चित की गई।

इस प्रकार महात्मा गांधी के सत् प्रयत्नों का संतोषजनक परिणाम निकला। देश-विभाजन के घोर विरोधी होते हुए भी परिस्थितियों से बाध्य होकर महात्मा गांधी ने देश-विभाजन के लिए अपनी मौन स्वीकृति इस अर्थ में प्रदान की, कि देश की जनता अपनी साम्प्रदायिक चेष्टाओं को मूल कर एक होकर कार्य करेगी। अन्त में भारत का विभाजन हुआ। १५ अगस्त १९४७ को हिंसा, मारकाट और लूट-खसोट के बीचमें विश्व के मानचित्र में दो नवीन राज्यों का उदय हुआ। स्वराज्य समारोहों की दीपावली ने असंख्य घरों में होली जला दी। भूखे भेड़िये के सदृश वे अपने आश्रयहीन तथा गृहहीन भाइयों पर दृष्ट पड़े। वर्तमान निराशामय था और भविष्य तिमिराच्छन्न हो अपना कलेवर दबाये बैठा था। नोआखाली, कलकत्ता और लाहौर के साम्प्रदायिक उपद्रवों को भीषण प्रतिक्रिया बिहार, दिल्ली और गढ़मुक्तेश्वर में देखने को मिली।

हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए महात्मा गांधी ने कठोर परिश्रम किया और अहिंसा एवं भ्रातृत्व को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए १३ जनवरी १९४८ को आमरण अनशन की घोषणा की। डा० राजेन्द्रप्रसाद के सत्प्रयत्नों एवं आश्वासन के पश्चात् महात्मा गांधी ने अपना उपवास समाप्त किया और घोषणा की, "यदि मतैक्य बना रहा तो मैं १२५ वर्ष जीवित रहूंगा।

बलिदान

३० जनवरी सन् १९४८ की संध्या अपने साथ आज नया ही अंधकार लेकर अवतरित हुई। एक पागल युवक नाथूराम गोडसे ने महात्मा गांधी पर अपने रिवाल्वर से तीन-गोलियां चलाई। अहिंसा का पुजारी ब्रिमा द्वारा 'हे राम' कहकर निर्वाण को प्राप्त हुआ।

महात्मा गांधी एक युग-पुरुष थे। वास्तव में वे एक महा-मानव थे। आने वाली संततियां सम्भवतः कठिनता के साथ विद्वान् करेंगी कि कभी ऐसा व्यक्ति भी इस मूल पर अवतरित हुआ था। कितनी भाग्यशालिनी थी हमारी यह शताब्दी। वे हमारे साथ रहे, हमें स्वाधीन कराया और विश्व को सत्य एवं अहिंसा के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया।

देन

संक्षेप में इस महान् आत्मा की देन को दो भागों में निरूपित किया

जा सकता है। (१) साधन शुद्धि की आवश्यकता पर बल और (२) राजनीति में नैतिकता की महानता।

सामान्यतः राजनीति को एक ऐसा विषय समझा जाता है। जिसमें उचित, अनुचित, कुटिलता, धोखा, पड़यन्त्र आदि को वैध समझा जावे। परन्तु महात्मा गांधी के अनुसार ऐसा कहना राजनीति के साथ अन्याय करना होगा। वे अच्छे उद्देश्य के लिए साधन के औचित्य पर भी अत्यधिक बल देते हैं और यही कारण है कि भारत को स्वतन्त्रता दिलाने में भी उन्होंने नैतिक साधनों पर व्यापक बल दिया और सत्य, प्रेम एवं अहिंसा के सिद्धान्त से वे विचलित नहीं हुए।

राजनीति में नैतिकता पर विशेष बल देकर उन्होंने समार के सम्मुख एक नया ही उदाहरण प्रस्तुत किया क्योंकि उनका सिद्धान्त था—“राजनीति और नीति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं और यदि एक पहलू खराब हो तो दूसरा कभी अच्छा नहीं हो सकता।”

महात्मा गांधी ने शिक्षा एवं न्याय व्यवस्था के सम्बन्ध में भी भारी योगदान दिया। सामान्यतः प्रचलित दण्ड-व्यवस्था का भी उन्होंने घोर विरोध किया तथा सुधारक जेठ एवं सुधारक दण्ड-व्यवस्था के प्रतिपादन का आग्रह किया और देश को स्वावलम्बी शिक्षा की दिशा में प्रेरित कर बुनियादी शिक्षा (Basic Education) का श्री गणेश किया।

जान होम्सब्रू के शब्दों में, “आज महात्मा गांधी समग्र ससार के जीवन के मध्य में खड़े हैं, ओर कई शताब्दियों का भाग्य अपनी मुट्ठी में बन्द किये हुए हैं।”

‘महात्मा गांधी ने हमको लड़ने का अहिंसा रूपी एक अमोघ अस्त्र प्रदान किया जिसके द्वारा हम भयंकर से भयंकर शत्रु के हृदय पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। इसी नीति के कारण ही वे इतने महान् हैं। उन्होंने भारतीय संस्कृति के उद्गम को पहिचाना और भारत की मूर्छित दिव्य अन्तः शक्ति को ज्वलन्त किया।

उसने जीवन के प्रत्येक कार्य-क्षेत्र में नीति प्रधान धर्म को महत्त्व दिया। उनका सत्य-सच में व्याप्त है। श्री श्रीमन्नारायण के शब्दों में यह कहा जा सकता है कि “यदि आज मानव जाति को शान्तिमय जीवन व्यतीत

करता है, संसार को भय और तृष्णा से मुक्ति प्राप्त करनी है तो उनके सम्मुख केवल एक ही मार्ग है—और वह है—गांधी विचारधारा ।”

: ४ :

प्रकाश-पुंज-बुद्ध

हिंसा द्वेष युक्त जन-जन में
 शान्ति प्रेम का भर उपदेश ।
 बुद्ध प्रबुद्ध हुए भारत में
 देने अग जग को सन्देश ॥

—कुमार

बलिवेदी की रक्तिम तिसा-वर्ण व्यवस्था की ईर्ष्या-द्वेष मयी अव्यवस्था की भीषण छाया से मानव मात्र को त्राण देने के लिए अनेकानेक धर्मों के व्यूह में एक सामान्य जन-धर्म की स्थापना के लिए, प्रेम और शान्ति की अजस्त्र धारा प्रवाहित करने के लिए, एक महान् आत्मा का जन्म पृथ्वी पर हुआ था । कुंचित केश युक्त, प्रकाश मंडल से शोभित, सहस्र-गहस्र सूर्य कांति से देदिप्यमान शुभ्र मुखमंडल समस्त शरीर मूर्तिमान् तपस्या का स्थूल रूप, दर्शक के मन में अनजाने ही शान्ति और प्रेम की स्फूर्ति भरने वाला, ऐसा था महात्मा बुद्ध का व्यक्तित्व ।

उदय

कपिलवस्तु के प्रतापी महाराज शुद्धोधन की पुण्यवती पत्नी महामाया की कुक्ष से एक बालक ने जन्म लिया । वैशाख की पूर्णिमा के चन्द्र को नवीन ज्योति मानो उसी दिन मिली, लुम्बिनी वाटिका को महान् तीर्थ होने का गौरव मिला । बालक सब शुभ चिन्हों से युक्त था—सिद्धार्थ उसका नाम रखा गया—जो उसके कर्मों से सिद्ध हुआ । जीवन के ऐहिक और पारलौकिक सभी अर्थों को उन्होंने सिद्ध किया था, इसी हेतु वे सिद्धार्थ कहे जाते थे । सिद्धार्थ ने अल्पकाल में ही सब विधाओं को ग्रहण किया, त्याग और

विरक्ति के प्रति उनका विशेष अनुराग था—उनके पिता, पुत्र की इस प्रवृत्ति को देखकर चिंतित थे। सिद्धार्थ को संसार के प्रति अनुरक्त बनाये रखने के लिए साधन जुटाये जाने लगे।

संसार—साधना

सिद्धार्थ का विवाह किया गया—यशोधरा से, विरक्त मन कुछ अनुरक्त हुआ—परन्तु, क्या मरुम अंगारे को आवृत्त रख सकी है, अट्ठाईस वर्ष की अवस्था में पुत्र के जन्म के साथ-साथ सिद्धार्थ में विरक्ति अत्यन्त प्रबल हो उठी !

त्याग

एक रात दूबे सोते हुए संसार को त्याग कर चले गए। इस त्याग की पृष्ठभूमि का निर्माण सिद्धार्थ के मन में एक जर्जर वृद्ध पुरुष, एक रोगग्रस्त तथा एक शव को देखकर हुआ था। सिद्धार्थ ने सोचा संसार दुःखमय है, जरा अनिवार्य है, मृत्यु अवश्यम्भावी है, तब इस जीवन को लेकर क्या करना है—संसार को जरा मरण के बन्धन से मुक्त करना आवश्यक है—सद्यक्षण मंगुर है, अस्थायी है, सच्चा सुख, वह क्या है—उसी का अनुसन्धान मनुष्य मात्र का लक्ष्य होना चाहिये। इस प्रकार की विचारतरंगिणी में प्रवाहित सिद्धार्थ बढ़ चले जीवन सत्य की शोध में।

घोर अंधकार—सजा हुआ अश्व—तरुण अश्वारोही—साथ में सारथी—यह सिद्धार्थ है—सम्पूर्ण अर्थ सिद्धि हेतु गृह त्यागी बने हैं। कुछ दूर चल कर नदी पर पहुँचे—अश्व—शेष—आभूषण, सब कुछ सारथी को दे दिया और अकेले चल पड़े। सारथी लौटा पुत्र का संदेश पिता को दिया। सारा नगर और राज-परिवार शोक में मग्न हो गया।

मुक्ति—साधना

कुमार सिद्धार्थ वैशाली पहुँचे। रुद्रक पंडित से ज्ञान प्राप्त किया। वहाँ इनकी प्रतिभा से आकृष्ट होकर महाराज बिम्बसार ने इन्हें अपना समस्त राज्य देने को कहा, परन्तु कुमार तो स्वयं राज्य त्याग कर आए थे—अब भला क्यों कर ग्रहण करते—बिम्बसार को समस्त सुख की असारता का उपदेश देकर चले गए। कुछ ब्रह्मचारी प्रभावित होकर सिद्धार्थ के साथ चले। जीवन, मृत्यु एव जरा से संघर्ष प्रारम्भ हो गया। तपश्चर्या की।

अनशन किए। व्रत एवं साधना में मन प्राण से निरत हुए, परन्तु ज्ञान लाभ न हुआ। सिद्धार्थ सोचने लगे—यदि इस तपस्या मार्ग से शरीर कृश होते-होते नष्ट हो गया तो मुक्ति साधना कौन करेगा? और वे समझ गए कि साधना मार्ग सुलभ होना चाहिये। काया-कष्ट वाले मार्ग से साधना अशक्य है। इस पर साधियों ने साथ त्याग दिया।

मुक्ति-मार्ग दर्शन

सिद्धार्थ, गया में बोधि तट के नीचे विचारमग्न हो बैठ गए। समाधि लग गई। अनेक विघ्न हुए, परन्तु सत्य का अन्वेषक निश्चल हो बैठा रहा—विघ्न स्वयं परास्त हो गए—दर्शो दिशाएं प्रकाश से भर गईं—प्रकाश रश्मियों से मंगल ध्वनि निःसृत होने लगी—पुष्पों ने स्वागत में पराग गंध से वानावरण भर दिया—पवित्रता का मागों निशंर फूट पड़ा—ब्रह्म का निवास जगत् तथा जगत् का रहस्य सत्य, सिद्धार्थ के सम्मुख स्पष्ट हो गया। वे बुद्ध हो गए। ज्ञान का उज्ज्वल प्रकाश उनके हृदय में भर गया। जिन सत्त्यों की उपलब्धि बुद्ध को हुई वे इस प्रकार हैं :—ये आर्य सत्य के नाम से प्रसिद्ध हैं :—

(१) दुःख है, सांसारिक जीवन दुःखों से परिपूर्ण है।

(२) दुःखों का कारण है।

(३) दुःखों का अन्त समभव है।

(४) दुःखों के अन्त का उपाय है।

इन्हें क्रमशः दुःख, दुःख-समुदाय, दुःस-निरोध तथा दुःस-निरोध मार्ग कहते हैं।

सिद्धार्थ को बुद्धत्व प्राप्त होने का शुभ दिन वैशाख की पूर्णिमा थी। उरुबेला वह पवित्र स्थान था जहां बुद्ध प्राप्त हुए ज्ञान पर मनन करते रहे। जीवन सत्य है यह वे सबके लिए सुलभ करना चाहते थे। पुनः उन्होंने उन्हीं साधियों को खोज निकाला जो पहले बुद्ध में अविश्वास कर चले गये थे। अब वे भी बुद्ध की ज्ञान प्राप्ति से प्रभावित थे। उन्हें सर्वप्रथम मगवाह बुद्ध ने ज्ञान दिया—कहा, अत्यधिक निप्सा और अत्यधिक विराग—तपस्या दोनों ही एकांत मार्ग उचित नहीं हैं साधना के लिए मध्यम मार्ग का अनुसरण करना चाहिए—इस मार्ग को मध्यमा प्रतिपदा कहा है।

अब भगवान् बुद्ध के संघ का विस्तार होने लगा—जन समुदाय उनके पीछे-पीछे रहने लगा ।

ज्ञान-वितरण

भगवान् बुद्ध ने सारनाथ में अपने उपदेशों से ज्ञान का प्रवाश फैलाया । वहां से वे राजगृह की ओर चले । मार्ग में एक आम्रवन में विराम किया । यहीं उनके कुल के अन्य छोटे राजकुमारों ने बुद्ध से शिक्षा ग्रहण की तथा संघ में सम्मिलित हुए । इन शिष्यों में आनन्द, देवदत्त, उपालि तथा अनिरुद्ध का नाम विशेष उल्लेखयोग्य है । आनन्द बुद्धदेव के पट्ट शिष्य थे ।

बुद्ध अब अपने स्वगृह गए—अपने पुत्र राहुल को भी ज्ञानदीक्षा दी । वहां से बुद्ध श्रावस्ती गए, श्रावस्ती के वैश्य ने उनके लिए जेतवन बिहार का निर्माण कराया । यह बिहार भगवान् को अत्यधिक प्रिय था । अनेक जातक कथाओं का उपदेश भगवान् ने यहीं दिया था । त्रिपिटक में यही के उपदेश संगृहीत हैं ।

विरोध

समार में कुटिलता अवश्य रहेगी—उसका उन्मूलन कठिन ही है । सत्पुरुषों का विरोध भी होता है और ऐसा देखा गया है कि जो अपने कहलाते हैं वे विरोध करते हैं, यदि ऐसा न होता तो 'आस्तीन में सांप' की कहावत क्यों प्रचलित होती । बुद्ध का विरोध उन्हीं के एक सम्बन्धी देवदत्त द्वारा हुआ । देवदत्त ने बुद्ध के नियमों में दोष दिखलाए—उन्हें सरल कहा तथा स्वयं ने कुछ कड़े नियम बनाए । फलतः राजा अजातशत्रु का राज्याश्रय देवदत्त को प्राप्त हो गया । देवदत्त ने भगवान् बुद्ध से अपने कठोर नियमों का प्रतिपादन कराना चाहा, बुद्ध ने नहीं किया, कहा—'शरीर सब कष्टों का मूल है—सब पापों की जड़ है, तब भी इसे कष्ट न देना ही उचित है, क्योंकि पुण्य साधन का मार्ग भी यही (शरीर ही) है । यदि शरीर न रहा तो पुण्य साधना, मुक्ति साधना कैसे हो सकेगी ?' बुद्ध ने अपने मध्यम मार्ग का ही प्रतिपादन किया तब भी उनका कहना था कि जो चाहें वे कठिन मार्ग भी अपना सकते हैं, पर किसी को बाध्य करने की आवश्यकता न होती चाहिये ।

देवदत्त इससे और भी क्रोधित हो गए, उन्होंने राजा अजात-शत्रु को बुद्ध भगवान् के विपरीत भर दिया और बुद्ध को मारने के लिए दुष्ट व्यक्तियों को प्रेरणा दी। परन्तु बुद्ध के सत्य के तेज के समीप हत्यारे भी हार गए तथा उनके मिथ्य दत्त सन्मार्ग के पथिक हो गये। अन्त में देवदत्त भी सन्मार्ग पर आए और भगवान् बुद्ध के दर्शन के लिए गए, परन्तु मार्ग में ही उनकी मृत्यु हो गई। अन्य धर्मावलम्बियों ने भी बुद्ध का विरोध किया, परन्तु—सत्य वो कभी आकारण में नहीं रखा जा सकता, दृढ रव्य देवीप्रसन्न हो प्रशस्त होता है। विरोध से बुद्ध और भी प्रसिद्ध हुए। बौद्ध धर्म तत्कालीन जैन धर्म बनने लगा। राजा प्रजा सभी इसके अनुगामी हुए। सम्राट् अशोक ने तो बुद्ध के सिद्धान्तों के आधार पर ही राज्य संचालन करने प्रारम्भ किया था।

भिक्षुगी—ग्रंथ की स्थापना

अनेक स्त्रियों ने बुद्ध-मार्ग के अनुसार चलकर मोक्ष पाने की कामना बुद्ध के पास रखी। बुद्ध-बुद्ध भोजने से, क्या महिला सभ की स्थापना की जाय ? परन्तु यह विचारवाहक धीमे ही समाप्त हो गई, अपने प्रिय शिष्य आत्मन के आग्रह पर उन्होंने भिक्षुणी सभ की भी स्थापना की। अनेक राजकुल तथा ज्ञानकुलों की स्त्रियों ने सभ में प्रवेश किया।

जनप्रिय-बुद्ध

बुद्ध का मार्ग सब स्थानों में अबाध था। कोई भी उनसे ज्ञान प्राप्ति हेतु मिल सकता था। एक बार जब वे पावा पहुँचे तो वहाँ का प्रधान लुहार उनके पास आया और उन्हें भोजन का निमन्त्रण दिया—बुद्ध तो भगवान् का स्वरूप थे वे भेदभाव क्यों करते—अतः निमन्त्रण स्वीकार कर लिया, परन्तु वह निमन्त्रण उन्हें अत्यन्त कष्टदायी सिद्ध हुआ। भयकर उदर पीडा से ग्रस्त हो गए भगवान् बुद्ध। वे कुशीनगर की ओर चले, परन्तु पीडा अब बहुत बढ़ गई थी।

महाप्रयाण

भगवान् बुद्ध के जीवन का अस्सीवां वर्ष कुशीनारा के समीप शालवन उत्तर की ओर शीश करके भगवान् लेट गये—चारों ओर शिष्यों का जमघट-

अपनी-अपनी शंकाओं को भगवान् के सामने रख रहे थे और बुद्ध, वे प्रसन्न मुद्रा में सबका समाधान कर रहे थे, कहीं किसी के मन में कोई भावना रह न जाय—कहीं कोई शंका खूनी सर्प बैठा न रहे—अतः सबको मुक्त रहे थे। सब को भगवान् के महाप्रयाण का विश्वास हो गया था, प्रिय शिष्यों के नेत्रों से अश्रु बह रहे थे। और बुद्ध, नाशवान् शरीर के लिए दुःख न करने का उपदेश दे रहे थे। अनेक लोग अन्तिम समय में भगवान् के दर्शन करने आए सबकी शंकाओं का समाधान कर भगवान् ने महासमाधि धारण कर ली। उनका अन्तिम-संस्कार मल्लो ने किया। भगवान् की अस्थियों के आठ भाग कर दिए गए। उन्हीं अस्थियों पर आठ स्तूप निर्मित हुए।

बुद्ध की शाश्वतता

बुद्ध महाप्रयाण कर गये परन्तु भिक्षु तथा भिक्षुणियों ने उनके सिद्धान्त को जन-जन में पहुँचा दिया, तिब्बत और चीन तक से इस धर्म का प्रचार हुआ। बुद्ध के सिद्धान्त ही आज के भारत के सिद्धान्त हैं। बुद्ध आज भी हैं और चिरकाल तक रहेंगे। भारत के धर्मप्राण वातावरण में—

“बुद्धं शरणं गच्छामि”

की महाध्वनि सदैव गुंजित रहेगी।

देवानां प्रिय-अशोक महान्

हे अशोक, तुम शोक से थे प्रेरित मतिमान् ।

अखिल लोक को कर गये तुम चिर-शान्ति प्रदान ॥

—कुमार

भारत का अतीत अनेक विभूतियों से अलंकृत रहा है, यहां ऐसे-ऐसे व्यक्ति भी हुए हैं जिन्होंने साम्राज्य-मोह तृणवत् त्याग दिया । महाराज बिन्दुसार का पुत्र अशोक ऐसा ही महान् सम्राट् था । उसमें साधु और सम्राट् का समन्वय था परन्तु अशोक के प्रारम्भिक जीवन में उनके मन का साधु सोया हुआ था और सम्राट् प्रबल था । अशोक ने वीरत्व और साधुत्व, दोनों की चरम सीमा रेखा का स्पर्श किया था । आज का भारत जिन सिद्धान्तों को अपनाकर विश्व में आदरणीय बन रहा है—उन्हीं सिद्धान्तों का प्रयोग अशोक ने आज से हजारों वर्ष पूर्व किया था । इसीलिए प्रजा उसे 'देवानां प्रिय' 'धर्मराज' इत्यादि संबोधनों से स्मरण करती थी । उसकी प्रजा सर्वमुक्ती थी, सर्व सम्पन्न थी ।

वीर भोग्या वसुधरा

महाराज बिन्दुसार के दो पुत्र थे, अशोक और सुशीम : अशोक को महाराज ने तक्षशिला का राष्ट्रीय (गवर्नर) नियुक्त किया था, सुशीम अयोग्य था, जिस विद्रोह को सुशीम सतत् प्रयत्न करके भी न समाप्त कर सका था, उसी को अशोक ने मरलतापूर्वक शांत कर दिया था । 'वसुधरा' वीरों के लिए है, योग्य व्यक्तियों के लिए है—अशोक इस सिद्धान्त पर विश्वास करता था, अतः वह अपने माई को अयोग्य मान कर स्वयं सम्राट् बनना चाहता था । महाराज बिन्दुसार भी सुशीम की अपेक्षा अशोक को योग्य मानते थे, इसलिए उन्होंने सुशीम के बड़े होने पर भी न्याय के विरुद्ध अशोक को युवराज घोषित कर दिया । गृह-कलह हुआ, परन्तु अशोक ने अपनी योग्यता से इस गृह-कलह को शांत किया और सम्राट् पद ग्रहण कर लिया । वास्तव में पृथ्वी योग्य व्यक्तियों के लिए ही है, योग्यों को ही इस संसार में जीने का अधिकार है—साधारणजन तो योग्यों के कार्य के साधन मात्र हैं ।

महत्वाकांक्षा

अशोक में महत्वाकांक्षा थी। ऐसे व्यक्ति ही कुछ कर सकते हैं, जिसमें कुछ करने की इच्छा ही नहीं है—जो शांत है, आकांक्षा-रहित है वह इस कर्मशील संसार में कुछ कर सकता है इसमें सन्देह ही है। अशोक समस्त भारत का एकछत्र राज्य स्थापित करना चाहता था। वह चाहता था कोई विदेशी भारत की ओर वक्र दृष्टि से न देखे, यदि देखे भी तो अशोक उसे ऐसा पाठ पढ़ाना चाहता था कि भविष्य में पुनः किसी का ऐसा साहस न हो। इसीलिए उसने सेना सशक्त की थी तथा अनेक बड़े-बड़े राज्यों को अपने वश में किया था, वह चक्रवर्ती सम्राट था। वह केवल महत्वाकांक्षी ही न था, वरन् उसमें महत्वाकांक्षा और प्रबन्धकुशलता का समन्वय था। इतना विशाल साम्राज्य होने पर भी उसका प्रबन्ध अशोक ने अत्यन्त सुन्दर ढङ्ग से किया था। प्रजा एक स्वर से कहती थी कि वह सर्वसुख-सम्पन्न है। महत्वाकांक्षा का यही रूप कल्याणकारी होता है—केवल महत्वाकांक्षा का परिणाम अच्छा नहीं होता।

कलिंग-विप्लव

कलिंग, एक छोटा सा राष्ट्र अपनी स्वतन्त्रता और समानता में मग्न संस्कृति और माहिष्य से पूर्ण था। अशोक की महत्वाकांक्षी दृष्टि इसे कैसे अपने भ्रू-निशेप से वंचित रखती-आक्रमण की योजना हुई अशोक सम्राट की विशाल सेना कलिंग पर चतुर्दिग प्रलय मेघ सहस्र छा गई, मानो कलिंग को मृत्यु मेखला से सुशोभित किया गया हो। कलिंग के सुख के दिवस समाप्त हो गए, अन्नगर की विषमयी फूत्कार की लपेट में आकर कोई सुख की बीन बजा भी कैसे सकता है !

अशोक की समुद्रवत, युद्ध कुशल सेना के समक्ष कलिंग कब तक ठहर सकता था, युद्ध हुआ भयंकर युद्ध। आकाश मांसमयी पक्षियों के रव से तिनटाित हो उठा, गीदड़ों और लोमडियों के चण्ड रव से दिशाएं कपित हो उठी, वसुंधरा अपने ही लालों के मुण्डों की माला धारण कर कांप उठी। अशोक की वज्र तुल्य, अग्नि चलती रही-चलती रही, रणक्षेत्र रक्त से आप्लावित हो गया—चारों ओर नरमुंड दिखलाई देने लगे। कलिंग का सर्वनाश हो गया, लाखों मनुष्य मारे गए, इतने ही बन्दी बना लिए गए। इतने भीषण

युद्ध के उपरांत अशोक ने कलिंग को अपने अधिकार में कर लिया—बहुत बड़ा मूल्य देना पड़ा अशोक को।

मनुष्य का जीवन—चक्र सतत गतिशील रहता है। कभी-कभी ऐसे क्षण भी आते हैं जब चक्र अपना मार्ग छोड़कर दूसरा ही मार्ग ग्रहण कर लेता है, तब मानों व्यक्ति नया जन्म लेता है। उसमें नवीन प्रवृत्तियाँ प्राचीन मार्ग के सर्वथा विपरीत होती हैं। ऐसे परिवर्तनकारी क्षण यह सच है बिरले ही होते हैं।

हृदय-परिवर्तन

कलिंग युद्ध तो जीत लिया अशोक ने, परन्तु मन की शांति हार गया। हार-जीत का क्रम इसी प्रकार है। मनुष्य समझता है वह कुछ पा गया कुछ जीत गया, पर उसी जीत में उसकी महान् हार निहित होती है। अशोक का भी यही हुआ था। कलिंग युद्ध के फलस्वरूप उसने पाई महान् अशांति।

रण-क्षेत्र के भीषण नरसंहार को देख कर, इस नरसंहार में मृत पुरुषों की विधवाओं के गगन-भेदी विलाप को सुनकर, अनाथ बालकों के चीत्कार को देखकर, सुसम्पन्न कलिंग देश को इस विपन्न अवस्था में पाकर, अशोक महान् का महत्वाकांक्षी हृदय भी दहल गया। वह अपनी निद्रा भी खो चुका था, रात और दिन उसे वही रण-क्षेत्र का दृश्य दिखलाई पड़ता था, करुण ध्वनियों से उसकी कर्णेन्द्रिय विकल हो रही थी—मानस उसका अशांति के कारण उद्बेलित हो रहा था। सम्राट आज सब कुछ स्वायत्त करके भी चैन न पा रहा था। चैन कहीं बाहर से तो नहीं आता वह तो अपने भीतर ही है। शांति और चैन में घनिष्ठ सम्बन्ध है, शांति के अभाव में चैन कहां, दोनों सापेक्ष हैं। अशोक की शांति चली गई थी। वह साम्राज्य से विरक्त हो रहा था। उसे प्रतीत हो रहा था यह रक्तपात व्यर्थ है, यह नर हत्या मनुष्य का कार्य नहीं दानव का कार्य है। यही से सम्राट अशोक का साधुत्व जागृत हुआ। अशोक आज सशोक था, मन में व्यथा की लहरें थी, वह क्या करे, उसे मार्ग न सूझ रहा था, सतत मनन, चिन्ता, विचार, शांति की खोज अशोक व्याकुल था। जीवन-पथ दुर्गम था उसके लिए, कैसे बढ़े? चारों ओर दर्प, महत्वाकांक्षा हत्या जनित अंधकार। अब वह समझ गया था कि हत्या में कोई सार नहीं कोई लाभ नहीं।

रुकाश किरण

हिंसा और द्वेष से विरक्ति की परिणति अहिंसा और प्रेम में ही हो सकती है। भगवान् बुद्ध के अहिंसा और सत्य के सिद्धान्तों में अशोक को अपने जीवन का मार्ग मिल गया। अहिंसा का तात्पर्य है किसी के प्रति हिंसाभाव न होना, तब, मन अभाववात्मक स्थिति में तो रह नहीं सकता अतः हिंसाभाव के अभाव के साथ-साथ हृदय में जीव मात्र के प्रति प्रेम भी होना आवश्यक है। यदि इस प्रकार तो अहिंसा साधना प्राणी करे तो सहज ही शांति पा सकता है।

अशोक ने सर्वप्रथम यही किया—“आज से मेरे साम्राज्य में जीव हत्या किसी भी कारण न होगी।” उसकी दूसरी घोषणा थी—“साम्राज्य विस्तार के लिए अब नरसंहार अथवा युद्ध न होंगे।” उसकी तीसरी घोषणा थी, “युद्ध के भेरी नाद के स्थान पर धर्म-घोष होंगे।” उसकी चौथी घोषणा थी - “विहार तथा आनन्द-यात्राओं के स्थान पर धर्म-यात्राएँ होंगी और किसी को भी प्राणदंड न दिया जायगा।

धर्मराज्य

इस प्रकार अशोक ने अपने साम्राज्य को प्रेम और अहिंसा के सूत्रों से बाँधना चाहा। बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये वह सतत प्रयत्न करता रहा। देश के विभिन्न स्थानों पर उसने चौरासी हजार स्तूप तथा मठ बनवाए। प्रस्तर की दीर्घ शिलाओं पर उसने बौद्ध धर्म के उपदेश अंकित करवा दिए—स्वयं भी अहिंसा और सत्य का उपासक बनकर राज्य संचालन करने लगा। प्रजा उससे प्रसन्न थी। उसे लोग ‘धर्मराज’ तथा ‘देवानांप्रिय’ अशोक महान् कहने लगे। विजयी तथा हिंसक अशोक की परिणति जीव मात्र से प्रेम करने वाले अशोक में हो गई। बौद्ध धर्म को राज्याश्रय प्राप्त हो गया। इसके साथ अन्य धर्मों को भी अशोक आदर की दृष्टि से देखता था यद्यपि वह हृदय से बौद्ध था तथा बौद्ध धर्म के प्रचार में ही योग दे रहा था। उसकी राज्य सभा में भी उपगुप्त नामक बौद्ध भिक्षु रहता था। अशोक इसे अपना गुरु मानता था तथा राज्य संचालन में भी इसकी मन्त्रणा लेता था। इस प्रकार अशोक का राज्य अब तलवार से संचालित न होकर बौद्ध धर्म से संचालित होने वाला धर्मराज्य था। अशोक के कारण इस समय बौद्ध धर्म भी अपने चरमोत्कर्ष पर था।

धर्म-प्रचार

अशोक महान् बौद्ध हो गया था। उसने राज्य संचालन के लिए धर्म आजाएँ निकाली थी। उसकी ये आजाएँ शिलालेखों पर अंकित हैं। साँची, सारनाथ, काठियावाड़, गिरनार, जगन्नाथपुरी इत्यादि दूर-दूर के स्थानों पर उसके अनेक शिलालेख हैं। इन सभी लेखों में उसके राज्य संचालन की नीति अंकित है। अनेक स्थानों पर उसने अपनी प्रजा के सुख के लिए सरोवर निर्माण कराये, शीतल छाया व ले वृक्ष लगवाए। मार्गों में पान्थशालाएँ बनवाईं।

अशोक अनेक धर्मसभाओं का आयोजन करता था। इनमें विभिन्न धर्मावलम्बी धर्मसम्बन्धी वादविवाद किया करते थे। समस्त साम्राज्य में धार्मिक नीति स्पष्ट करने के लिए तथा लोगों की कठिनाइयाँ दूर करने के लिये उसने धर्म-महामात्या नाम के अधिकारी नियुक्त किए थे।

भारत में ही नहीं, विदेशों में भी अशोक ने बौद्ध-धर्म-प्रचारार्थ प्रयत्न किये थे। बौद्ध धर्म के इस प्रचार के लिए उसने अनेक दूत भेजे थे, इन दूतों की संख्या चौसठ हजार थी, इनके साथ उसने अनेक बौद्ध सिद्धांतों के विद्वान् भी भेजे थे। इनके अतिरिक्त धर्म-प्रचार मन्दिरों का निर्माण भी उगने कराया था, इन मन्दिरों की संख्या चौरासी हजार थी।

जहाँ-जहाँ अशोक गया, वही-वही उसने किसी न किसी रूप में अपना स्मारक बनवाया। ये स्मारक अभी भी मिलते हैं। मध्य एशिया में अनेक लोगों को भेजकर उनके उपनिवेश स्थापित करवाए। सीरिया, फिश्त्र इत्यादि दूरस्थ स्थानों में भी उसके दूतों के पहुँचने के प्रमाण प्राप्त होते हैं।

बौद्ध धर्म का, अशोक इतना भक्त हो गया था कि उसने अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री सधमित्रा को भी भिक्षु और भिक्षुणी बना कर लंका में धर्म प्रचारार्थ भेजा था। वास्तव में किसी भी बात की अति होने पर उसकी प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक ही है। कलिंग युद्ध सम्राट अशोक की साम्राज्य विस्तार तथा युद्धप्रिय प्रवृत्ति की चरम सीमा थी अतः उसकी प्रतिक्रिया भी उतनी ही तीव्र होनी आवश्यक थी और हम देखते हैं कि जितनी विजय उसने तलवार से की उतनी ही उसने धर्म विजय की। आकांक्षा भी प्रबल थी अतः इस धर्म-प्रचार के लिए अथवा धर्म-विजय के लिए उसने अपनी समस्त शक्ति से प्रयत्न किया था। यही कारण था कि बौद्ध धर्म का जितना प्रचार अशोक के समय में हुआ था, आगे के युग में न हुआ।

आत्म विश्वास

सत्य और अहिंसा का सतत पालन करने से अशोक की महत्वाकांक्षा आत्मविश्वास-योग में परिणत हो गई थी। अब वह अहिंसा और प्रेम-मार्ग का पथिक था। उसे इन सिद्धान्तों पर अमिट विश्वास था। अशोक के महा-मन्त्री थे—राधागुप्त, वे अपने सम्राट वे अनन्य भक्त थे। अशोक के सिद्धान्तों पर वे भी चाहते थे कि समस्त भारत अहिंसा और प्रेम के सिद्धान्तों से एक सूत्र में बँध जाय, परन्तु ऐसा हो न सका। अशोक के जीवनकाल में ही उसके महासाम्राज्य में यत्र-तत्र विद्रोह प्रारम्भ हो गए थे। सेना को पहले ही समाप्त कर दिया गया था, कोष का अधिकांश भाग बौद्ध धर्म-प्रचारार्थ समाप्त कर दिया जाता था। ऐसी अवस्था में अव्यवस्था का होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि ससार में सभी तो साधु नहीं हो सकते। साम्राज्य की इस अवस्था की देखकर मंत्री राधागुप्त भी समझ गया कि अहिंसा के आधार पर तथा दण्ड के अभाव में राज्य-संचालन कठिन है। उसने अशोक से निवेदन भी किया, परन्तु अशोक को दृढ़ आत्मविश्वास था, उसका कहना था कि आज नहीं तो कल और कल नहीं तो सौ, हजार, दस हजार वर्षों में ही सही इन प्रयत्नों का सुफल अवश्य निकलेगा, निराशा तो वह जानता ही न था। अतः परम विश्वास के साथ अहिंसा साधना चलती रही-चलती रही। इसका एक परिणाम अवश्य हुआ कि अशोक के पीछे ही महान् साम्राज्य नष्ट हो गया। महापुरुष कर्म पर विश्वास करते हैं, फल पर नहीं।

“कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन” श्री मद्भगवद्गीता के इस वाक्य पर अटूट विश्वास रखते हैं। अशोक को अपने सिद्धान्तों की सत्यता एवं पवित्रता पर अमिट विश्वास था, वह जानता था कि इन सिद्धान्तों के आधार पर किए गए प्रयत्न अवश्य ही सुफल देंगे, अतः वह अपने सश्रवण-मार्ग पर चलता रहा।

हृदय-विदारक घटना

सम्राट अशोक ने अपनी वृद्धावस्था में एक विवाह किया था—यह पत्नी तिष्यरक्षिता सज्ञा से प्रख्यात थी—अत्यन्त रूपवती तथा युवती, साम्राज्ञी बनने के लोभ में ही इस युवती ने वृद्ध सम्राट् को संभवतः स्वीकार किया था। परन्तु, अपनी भूल पर स्वयं पश्चाताप करने लगी—यौवन का साथी तो युवा ही होना चाहिए—अतः तिष्यरक्षिता की दृष्टि अशोक के परम रूपवान्

तथा युवक पुत्र कुणाल पर पड़ी। तिष्यरक्षिता कुणाल पर मोहित हो गई। उसने कुणाल को अपने जाल में बांधना चाहा, परन्तु कुणाल, वह सिद्धान्तों का दृढ़ आदर्शवादी युवक था—इस नीच प्रलोभन में न पड़ा। उसने तिष्यरक्षिता का उसके कुविचारों के लिए तिरस्कार किया। तिरस्कृत तथा अपमानित रानी ईर्ष्या तथा प्रतिशोध की अग्नि में जलने लगी। उसने षडयंत्र रचा तथा अशोक की राज्य-मुद्रा से अंकित एक आदेशपत्र कुणाल के पास भेजा जिसमें उसके नेत्र मांगे गए थे। कुणाल पितृ-भक्त था उसने तत्काल आज्ञा का पालन किया। तिष्यरक्षिता वे नेत्र पा गई जिन पर वह पागल थी, परन्तु इन नेत्रों की शोभा कुणाल के आनन पर होने से ही थी, अब तो वे मांस के दुर्गन्ध-युक्त लोथड़े थे। कुणाल गीत गाता भिक्षा मांगता अपनी पत्नी और पुत्र के साथ पाटलीपुत्र आया। अशोक महान् अपने मवन में थे। गायक का करुण स्वर सुना, परिचित लगा, बुलवाया, परन्तु जब देखा कि वह तो उनका पुत्र है—कुणाल। साथ ही जब पुत्र ने कहा कि उसने नेत्र-दान पिता की राज्याज्ञा से किया तो अशोक पिता का हृदय टूक-टूक हो गया।

निर्वाण

इस घटना के पश्चात् ससार की असारता ने अशोक को और भी प्रभावित किया और पूर्ण रूप से बौद्ध हो गया। ई० सं० पूर्व २२६ में इस बौद्ध सम्राट् का जीवन-दीप निर्वाण को प्राप्त हो गया।

अशोक महान् सम्राट् था। वह जो अहिंसा का दीप प्रज्ज्वलित कर गया था आज भी भारत को ज्योतित कर रहा है। अशोक चक्र आज भी देश की स्वतन्त्रता का प्रतीक बना राष्ट्रध्वज में शोभा पा रहा है। घन्य है सम्राट् अशोक और उनका यह भाग्यशाली उन्हीं के समान महान् देश भारत ! निस्संदेह भारत उन जैसी विभूतियों द्वारा ज्योतित ज्ञानदीप एक दिन संसार को अशान्ति देने वाले अज्ञानांधकार को दूर करने में समर्थ होगा।

: ६ :

महामना पं० मदनमोहन मालवीय

सत्य, तपस्या, देश-प्रेम और हिन्दू संस्कृति के अवतार ।

महामना ने किया राष्ट्र में शिक्षा का सम्यक् विस्तार ॥

—सहृदय

स्वरूप

ऊपर से नीचे तक स्वच्छ घवल वस्त्रों से सुसज्जित, सिर पर वही अनोखी पर परिचित शैली का साफा, ललाट पर श्वेत बिन्दु, गले में दुपट्टा, शरीर पर चपकन और धोती, इकहरा बदन, युग-युग से संचित हिन्दू-संस्कृति के दायित्व को वहन करता हुआ, सात्विक जीवनयापन का व्रती, सिर से पांव तक 'हृदय ही हृदय' के सिवा और कुछ नहीं तथा तपस्यापुंज का पुतला महामना मालवीय भारत का चलता फिरता भाग्य था ।

कुल

झांसी से थोड़ी दूर बुन्देलखण्ड के किसी ग्राम में पं० ब्रजनाथ के पाण्डित्यपूर्ण कुल में आपका जन्म २५ दिसम्बर, १८६१ ई० में हुआ था । ब्रजनाथ जी की विद्वत्ता, सुभाषण शैली और सौम्यभावना ने बड़े २ राजा-महाराजाओं में उच्चकोटि की प्रतिष्ठा प्राप्त करली थी । इन्हीं ब्रजनाथजी के सबसे कनिष्ठ पुत्र थे हमारे चरित्रनायक महामना मदनमोहन मालवीय ।

मालवीयजी की शिक्षा में सदा धर्म-संसर्ग रहा । यही कारण था कि अंग्रेजी के उच्चतम शिक्षित होते हुए भी उन पर ईसाइयत का रंग नहीं जमने पाया । आज के जो भारतीय छात्र पाश्चात्य शिक्षा के साथ २ धर्म-शिथिल बन जाते हैं उन्हें मालवीयजी के जीवन शिक्षा सैनी चाहिये । मालवीयजी के निकट शिक्षा का अर्थ प्रबुद्ध होना था, नकल करना नहीं । आज का शिक्षित शिक्षा प्राप्त के पश्चात् विदेशी बन जाता है यह बात मालवीय जी को रुचिकर नहीं थी इसलिए उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा के लिए

भारतीय सस्कृति के वातावरण को जीवित रखते रहने वाला भारतीय महाधाम काशी में एक विश्वविद्यालय खोला। इस विश्वविद्यालय के वातावरण में रहकर पढ़ने वाला छात्र सर्वथा नास्तिक बन जाए यह थोड़ी कठिन बात थी, सम्प्रति क्या हो रहा है इसे जाने दीजिये।

मालवीयजी ने कलकत्ते से एण्ट्रेन्स पास करके १८८४ में बी० ए० उत्तीर्ण किया, परन्तु साथ २ उन्होंने सस्कृत का अध्ययन भी चालू रखा, और एक अध्यापक के रूप में अपना जीवन प्रारम्भ किया।

सार्वजनिक सेवा

स्वदेश व स्व-समाज सेवा का मालवीयजी को प्रारम्भ से ही प्रेम था। आपने साहित्य की सेवा के लिए प्रयाग में 'लिटरेरी इन्स्टीट्यूट' (साहित्य सभा) और 'हिन्दू समाज' नाम की एक संस्था स्थापित की और इनके द्वारा अपने सार्वजनिक-सेवा-व्रत का प्रारम्भ किया।

क्षेत्र विस्तार

१८८५ में आप राष्ट्रीय महासभा की दूसरी बैठक में कलकत्ता गए। वहाँ आपका कालाकांकर महाराज (ताल्लुकेदार) से परिचय हुआ। राजा साहब ने आप में एक सत्यवादी, कर्मनिष्ठ और श्रमशील तथा स्वतन्त्र व्यक्तित्व के दर्शन किये। और आपसे अपने 'हिन्दुस्तान' नामक पत्र के सम्पादन के लिए निवेदन किया। यह हिन्दी का सर्वप्रथम दैनिक था।

पंडितजी को २००) या २५०) ६० मासिक मिलने लगे। कार्य-क्षेत्र विस्तृत होने लगा। आपके कारण 'हिन्दुस्तान' पत्र की ख्याति फैलने लगी। यहां तक कि सरकार ने भी अपनी वार्षिक रिपोर्ट में इसकी प्रशंसा की।

अपने बाहुबल से क्षेत्र बनाकर पनपने वाले लोगों में मदनमोहन मालवीय का नाम सर्वप्रथम श्रेणी में लिखा रहेगा। अब देश में जिस किसी ने समाचार पत्र निकाला वही मालवीयजी की ओर देखने लगा। वेदा भक्त पं० अयोध्यानाथ ने प्रयाग से 'इण्डियन यूनियन' नामक एक पत्र निकाला। इसका भी सम्पादन-भार मालवीयजी पर ही डाला गया। इसके पश्चात् १९०८ ई० में हिन्दी साप्ताहिक 'अभ्युदय' पत्र निकला तो इसके लिए भी मालवीयजी की बुलाहट हुई। इसके कुछ दिन पीछे 'लीडर' अंग्रेजी दैनिक पत्र निकला तो भी मालवीयजी ही की सहायता की अपेक्षा हुई।

पत्रों को वेन

इस समय तक हिन्दी में कई पत्र-पत्रिकाएं चल निकले थे, पर सभी में गम्भीर व उच्च विचारों मुख्यतः राजनीतिक विचारों का अभाव रहा करता था। मालवीयजी के सम्पादन के अनुकरण ने हिन्दी पत्रों को इस कमी को बहुत कुछ सीमा तक पूरा किया।

वकील मालवीय

मालवीयजी ने १८९१ ई० में अपनी प्रतिभा की देश में धूम मचा दी थी। यहां तक कि कांग्रेस के जन्मदाता श्री ह्यूम महोदय। आपकी वकील-प्रतिभा का लोहा माना था। पर मालवीयजी का हृदय देश-सेवा के अतिरिक्त और किसी कार्य में तो रमता ही न था। आपके देश हितकारी कामों को देखकर ३१-१-१९१२ को श्रीमती एनीबिसेन्ट ने कहा था—“आपने अपना सांसारिक जीवन, अपनी सब शक्ति, अपनी विलक्षण वाणी, क्या र कहा जाय आता समस्त जीवन और स्वास्थ्य तक इस महान् कार्य में लगा दिया था।” हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान ये तीन आपके बीजमन्त्र थे। “हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान सब मित्र वो गो मत्र महान्” मंत्र आपका व्यक्तित्व था। हिन्दू की परिभाषा आपके हृदय में बड़ी व्यापक थी। इस देश के प्रत्येक निवासी को वे हिन्दू कहना चाहते थे। आपने प्रयाग विश्वविद्यालय में हिन्दू विद्यार्थियों के लिए हिन्दू बोर्डिङ्ग की स्थापना कराई। दौरा करके इन कार्य के लिए धन एकत्रित किया। आज इसमें २५० विद्यार्थी सुखपूर्वक रहकर विद्याध्ययन करते हैं।

ज्ञानपिपासा और हिन्दी-आन्दोलन

मालवीयजी ने ज्ञान-प्रसार के लिए ‘भारती-भवन’ नामक एक पुस्तकालय भी प्रयाग में चलाया था। यह आज भी चल रहा है।

युक्त प्रान्तीय न्यायालयों में उर्दू का बोलबाला देख मालवीयजी ने हिन्दी जानने वाले गरीब किसान, श्रमिक एवं साधारणजनों की कठिनाइयों का अनुभव किया। और हिन्दी-प्रसार के लिये बड़ा भारी आन्दोलन प्रारम्भ करवाया। इसका परिणाम यह हुआ कि सरकार ने १९०० ई० में एक आदेश प्रचारित कर न्यायालयों में उर्दू के साथ २ हिन्दी को भी प्रतिष्ठा प्रदान कर दी।

आपने १९१० में अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग की स्थापना करके विश्वविद्यालय स्तर तक की हिन्दी परीक्षाएँ चलाईं जो आज देश मान्य हो रही हैं। आपने हिन्दी की सेवा के लिए मित्र २ साधन काम में लिये।

आपकी ज्ञानपिपामा अति तीव्र थी। आपने पूर्व-पश्चिम का भेदभाव भुलाकर काशी में आधुनिक ढंग का विश्वविद्यालय स्थापित किया। हिन्दू विश्वविद्यालय के नाम में यह समस्या आज भी भारत के श्रेष्ठ विश्व-विद्यालयों में प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय माना जाता है।

हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी को स्नातकोत्तर शिक्षा में आपने ही सर्वप्रथम स्थान दिलाया था। यह बात आपके जीवन चरित्र का एक अभिन्न अंग बनी रहेगी।

इसी प्रकार हिन्दू-संगठन के लिए आपने 'हिन्दू-सभा' की स्थापना की। पर आपके ये सारे कार्य व्यापक देशहित की दृष्टि से ही सम्पन्न हुए थे। इनमें सकोच के लिए कोई स्थान न था।

आपने सनातन धर्म-सभा की भी स्थापना की। यह सभा आज भी दिल्ली नगर की प्रतिष्ठित संस्थाओं में मानी जाती है।

जागरण

मालवीयजी में आज की सी उदारता थी। वे छुआछूत, स्त्री-शिक्षा व स्त्री-अधिकार, विदेश, यात्रा, उच्चशिक्षा, समाज-संगठन आदि आज की सभी बातों के उस काल में भी समर्थक थे जब इन बातों को लोग उपेक्षा की दृष्टि से देखा करते थे। सच पूछा जाय तो मालवीयजी इस देश के लिये वरदान थे।

कांग्रेस और मालवीयजी

कांग्रेस के जन्म से मालवीयजी का सम्पर्क कांग्रेस से रहा। उनके ओजस्वी भाषणों से कांग्रेस जीवन-ग्रहण करती रही। देश की गरीबी 'व्यवस्थापिका सभाओं में सुधार,' 'संगठन,' 'शिक्षा' आदि विभिन्न विषयों पर आपने अनेक बार व्याख्यान देकर लोगों के कान खोले। आपके भाषण सदैव निर्भीक और सत्य पर आधारित होते थे—आपका आत्मबल आपकी बाणी को और भी गम्भीर बना देता था। आप जब कभी इस देश के माय्य

विधाता अंग्रेजों से बात करते थे तब स्पष्ट शब्दों में उनकी कटु आलोचना करते नहीं चूकते थे, पर साथ ही उनकी देश भक्ति, समय की पाबन्दी, नियमबद्ध कार्य करने की प्रवृत्ति-सजावट और अध्यवसाय पर मुग्ध भी थे ।

आप कांग्रेस के कार्यक्रम से कई बार सहमत नहीं होते थे । १९२० से १९३० तक तो एक प्रकार से उससे अलग ही रहे, किन्तु अपने मुंह से कभी उन्होंने कांग्रेस का विरोध नहीं किया । आज के नेताओं की तरह स्वार्थ बनता रहने तक कांग्रेस को ठीक कहना और स्वार्थ-हानि होने पर उसके प्रति विष उगलना—मालवीयजी की नीति में नहीं था । कांग्रेस के प्रति मालवीयजी जैसे वफादार रहे वैसे अन्य कम ही लोग होंगे । यही कारण था जब अवसर आया मालवीयजी को देश ने कांग्रेस के अङ्क में खेलते पाया ।

देश-सेवा के विभिन्न साधनों को आपने अपनाया और लोगों को अपनाने की अपील की । आपका आदेश देश को नतमस्तक स्वीकार हुआ करता था । आप जिस कार्य में खड़े हो जाया करते थे, लोग स्वयं सेवकों की भांति आपका साथ देने को तत्पर रहा करते थे ।

नगर-सेवा

आपने प्रयाग नगर-बोर्ड के सदस्य एवं उपाध्यक्ष के रूप में मोहल्लेवार सेवा का कार्य किया था । नये मुहल्ले बनवाना, सफाई देखना, उनकी अन्य कठिनाइयों का उन्मूलन करना आपका मानो नगर-पिता के नाते कर्तव्य बन गया था । आज का लूकरगंज मोहल्ला आपके ही प्रयत्न का फल है ।

बीमारियों के विस्फोट के समय, जब लोग अपने प्राणों का मोह लेकर नगर छोड़ भागते हैं, मालवीयजी घर-घर, मुहल्ले-मुहल्ले घूम कर बीमारों का पता लगाते फिरने में ही अपने जीवन को सार्थक मानते थे । जब कभी मालवीयजी की इन सेवाओं की याद आती है देशवासियों का हृदय आज भी उनके प्रति श्रद्धानत हो जाता है । मालवीयजी के जीवन की एक-एक घटना आज के नेतागण के लिए, यदि वे सचमुच देश-भक्त बनना चाहते हैं, तो आदर्श बनाने योग्य है ।

व्यवस्थापिका-सदस्य

मालवीयजी को सन् १९०२ ई० में सरकार ने व्यवस्थापिका सभा

का सदस्य नियुक्त किया। आजकल की भांति सदस्यों को बोलने का स्वतन्त्रता न होते हुए भी उस समय जो कुछ मालवीय बोल सकते थे यह मालवीयजी के ही अनुरूप था। दूसरे सदस्यों का इतना साहस कम हो सकता था। मालवीयजी ने लोकोद्दिष्ट की उपेक्षा कभी नहीं की। वे व्यवस्थापिका में सदस्य बनना का जो कर्तव्य था उसके प्रति सदा जागरूक रहे।

दो गुण

मालवीयजी में दो बातें ऐसी थीं जो कभी भुलाई नहीं जा सकती हैं। एक तो उनकी वक्तृत्व शक्ति और दूसरा धन-मप्राप्त करने का ढंग। वे विरोधी से विरोधी व्यक्ति से आने की कार्य के लिए सदा एकत्रित करने में कुशल थे। उनकी इस कुशलता और सफलता का कारण थी उनकी वक्तृत्व शक्ति। वे ऐसे ढंग से बात कहते थे कि मुझे काले के मन पर जादू सा हो जाता था।

एक घटना

आप एक बार जयपुर में होने वाले वैद्य-सम्मेलन के समापति निर्वाचित हुए थे। उस समय अंग्रेज सरकार का देशी राज्यों पर भयंकर आतंक था। अंग्रेजों के शत्रु, देशी राज्यों के भी शत्रु ही माने जाते थे। यही कारण था जयपुर नरेश माधवसिंहजी ने मालवीयजी का जुलूस निकालना बन्द कर दिया। उनके भाषण पर भी रोक लगा दी। परन्तु मालवीयजी ने अपनी प्रतिभा के बल पर महाराजा जयपुर को ऐसा मोहित कर लिया कि उन्होंने आपको अपने महल में बुलाकर भाषण सुना।

मालवीयजी ने श्री मद्भागवतपुराण की कथा की ओट में वैद्य सम्मेलन के समापति पद से जो भाषण दिया वह जिन्होंने सुना वे कभी मालवीयजी को भुला न सकेंगे। महाराजा जयपुर ने हिन्दू विश्वविद्यालय के लिये आर्थिक सहायता दी—मालवीयजी से अपने अपराध की क्षमा मांगी और उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

मालवीयजी की जयपुर यात्रा का फल यह हुआ कि जयपुर के सामाजिक जीवन में अ्प्रति आगई। स्वयंसेवक दल का निर्माण हुआ। हिन्दू अनाथाश्रम की स्थापना हुई जो आज तक जयपुर में फल फूल रहा है। इस

प्रसङ्ग में दो सज्जनों के नाम उल्लेख हैं—१. आचार्य वंशोद्भव श्री दामोदर प्रसादजी गलते वाले और श्री रूपचन्द जी लूणिया । ये वे व्यक्ति हैं जिन्हें मालवीयजी ने जयपुर के हिन्दू-जीवन के प्राण और समाज के आधार माना था । इन दोनों सज्जनों ने मालवीयजी की प्रेरणा से जिस जीवन के आदर्श को अपनाया था उससे आज तक जनसेवा की दिशा में बहुत कुछ कार्य हो रहा है ।

चारों खाने स्वदेशी

मालवीयजी का रोम-रोम स्वदेशी था । वे धर्म, शिक्षा, व्यवसाय, व्यापार, रहन-सहन, शासन सभी में स्वदेशी की छाप देखना चाहते थे । वे केवल दिखाऊ देशभक्त न थे । वे सामूहिक रूप में स्वदेशी बनने बनाने के पक्ष में थे । प्रयाग में १८८१ ई० में एक 'देशी निजार्त कम्पनी' खोली गई थी । मालवीयजी इसके प्राण थे । स्वदेशी कारीगरी को इस संस्था ने बड़ा प्रोत्साहन दिया था । मालवीयजी का कहना था कि स्वदेशी वस्तु चाहे भही और महंगी ही क्यों न हो, इसके स्थान पर विदेशी वस्तु खरीदना पाप है ।

बिरोधी गुण

मालवीयजी जहाँ दहाड़ सकते थे वहाँ कोयल की भाँति कूकना भी जानते थे । उनमें बोलने की शक्ति बड़ी अद्भुत थी । सोते के कलकल निनाद की भाँति अनिरुद्ध वे बोलते ही चले जाते थे । लोगों में उनकी बात गुरने की इच्छा कभी शान्त नहीं होती थी । वे कटु से कटु बात कहकर भी श्रोता को विमन नहीं होने देते थे । लगातार ५० वर्ष तक भारतीय जनता ही नहीं मानवता की सेवा करने वाले ये आदरणीय नेता अपने समय में आप थे । देश की आँखें इन्हीं पर टिकी रहती थी ।

देशवासियों की उपेक्षा

परन्तु, इस देश की जनता ने योग्य नेता पाकर भी अपने को समय पर न सम्माला । एक समय था जब यहाँ के निवासी 'अपने पन' का मूल्यांकन करने में प्रमाद करते थे । यद्यपि आज हम स्वतन्त्र हैं, पर, देखा जाय तो 'अपनेपन' को आज भी वह गौरव प्राप्त नहीं हो पाया जिसके लिए मालवीय-युग से ही पर्याप्त प्रयत्न होते आ रहे हैं अभी तक इस देश के लोग 'अपनेपन' के प्रति शिथिल हैं । मालवीय-युग में जब देश प्रेमी कहलाने वाले लोग भी सच्चे अर्थ में राष्ट्रीय न बन पाये, राष्ट्र की भाषा, वेश, संन्यता,

धन्य है मालवीय कुल जिसमें आप जैसे नररत्न ने जन्म लेकर भारत वसुन्धरा का हर क्षेत्र में हर तरह से उपकार किया और संसार में उसके नाम का आदर सत्कार कराया। श्री विनायक मेहता के शब्दों में वे “क्रोधों और कंकरों के समूह में ग्रेनाइट की हठ चट्टान की भांति खड़े रहे।” अर्थात् उन्होंने जीवन में कभी विरोधियों को महत्व नहीं दिया। वे स्वयं बने और देश को भी उन्होंने स्वयं ही बनाया।

: ७ :

गुरुदेव—डॉ० रवीन्द्रनाथ टैगोर

खुली कल्पना आँख से देखा सब संसार ।
काव्य-कला के क्षेत्र में मिला विश्व-सत्कार ॥

—सहृदय

व्यक्तित्व

साधुता की चलती फिरती प्रतिमा। लहराती हुई मव्य श्वेत दाढ़ी। लम्बे छरहरे शरीर पर श्वेत धौत वस्त्र, एक रेशमी दुपट्टा पैरों में कासे रंग के उपातह—क्या ही प्रभावशाली मूर्ति थी।

लेखनी के धनी, कल्पना के कोष। घनाढ्य तथा सुसंस्कृत ब्रह्मण परिवार में जन्म, फिर भी सरलता, संयम और सन्तोष के आगार थे गुरुदेव।

जन्म और बाल्य तथा गार्हस्थ्य

७ मई सन् १८६१ में आपका जन्म हुआ था। आपके पिता देवेन्द्रनाथ ठाकुर आपको पाकर धन्य थे। पिता की संत प्रकृति का रवीन्द्रनाथ में बड़ा जीवन प्रतिबिम्ब पड़ा।

रवीन्द्र स्वतन्त्र प्रकृति के व्यक्ति थे। इन्हें बचपन से ही स्कूल का वातावरण अनुकूल नहीं पड़ा। यहीं कारण था इनका अध्ययन घर पर ही हुआ था।

१७ वर्ष की आयु में विलयत गये। वहाँ आपका अध्ययन लन्दन विश्व-विद्यालय कासेज में हुआ। आपकी लेखन शक्ति पर आपके अंग्रेज अध्यापक चकित थे। भारत में उत्पन्न इस रत्न ने विदेश से विकास प्रारम्भ किया, वहीं से इनकी ख्याति फैलने लगी।

भारत लौटते ही टैगोर ने साहित्य-साधना का व्रत ले लिया। थोड़े ही दिन में आप बंग-साहित्य के शिखर पर विराजमान हो गये। आपका मन शहरी चहलपहल में नहीं रमता था इस कारण आप गङ्गातट पर शिलीदा (शियालदा) नामक स्थान में, जहाँ इनकी पारिवारिक जमींदारी थी, रहने लगे।

साहित्य का यह अन्यन्य सेवक कुछ समय में विख्यात हो गया। लोगों में इनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई। इनके नाम पर लोगों में अटूट विश्वास जम गया। टैगोर की रचना का नाम सुनकर लोग पढ़ने को लालायित रहने लगे।

१८८३ में रवीन्द्र का विवाह मृणालिनी नामक एक परम सुशीला, सुन्दर और सुयोग्य कन्या से सम्पन्न हो गया। आपको पाच सन्ताने भी हुईं, पर १९०२ में आपकी सुखशान्ति विक्षुब्ध हो गई।

पहाड़ टूट पड़ा

१९०२ में आपकी सहधर्मिणी का स्वर्गवास हो गया। और कुछ ही दिन पीछे मध्यमा पुत्री का वियोग भी। इन घटनाओं ने रवीन्द्र के हृदय को मसोस कर रख दिया। साधुता के अवतार में अब विराग का आविर्भाव हो गया। जीवन का ढांचा ही बदल गया। १९०५ में आपके पिता की ऐहिलीकिक लीला भी समाप्त हो गई। और साथ ही १९०६ में ज्येष्ठ पुत्र भी मुख मोड़ गए। ऊपर नीचे इतनी चोटें खाकर रवीन्द्र तिलमिला तो उठे पर संसार-कारागार के बदी थे करते भी क्या भोग तो भोगने ही से काम चलता है, दूसरा कोई चारा नहीं होता।

ऋन्दन से आनन्द की ओर

यही कारण था कि आपकी कविताओं में शोक-स्त्रोत उमड़ पड़ा। आपका काव्य क्या है एक प्रकार का ऋन्दन है। यह ऋन्दन व्यक्तित्व की सीमा तोड़कर साधारणीकृत ऋन्दन कहलाने योग्य था।

रवीन्द्र के जीवन में इन आपत्तियों ने धैर्य और साहस का मानो कोष

उड़ेल दिया । आपकी रचनाओं में अभिव्यक्त होने वाला शोक घीरे २ विराग की ओर घूम कर दार्शनिकता की ओर मुड़ गया ।

उपनिषद् का ज्ञानकोष बगभारती में उतरने लगा । 'गीतांजलि' आपकी ऐसी ही ज्ञानगरिमा पूर्ण रचनाओं का संग्रह है । पाश्चात्य विश्व में जहां भौतिक चकाचौंध ही सब कुछ मानी जाती थी गीतांजली के अनुवाद रूप में उपनिषद् की ज्ञानराशि की एक साधारण सी झलक पहुंची । पाश्चात्य विश्व मुग्ध हो गया । पश्चिम वाले गीतांजली को पुरस्कृत करने को तैयार हो गए । फलस्वरूप रवीन्द्र को 'नोबिल-पुरस्कार' प्राप्त हुआ । यह १८१३ की बात है । इससे पश्चात् टैंगोर विश्व ख्याति के कलाकार हो गये थे क्योंकि गीतांजली का ससार की सभी प्रसिद्ध भाषाओं में अनुवाद हो चुका था ।

विदेशों पर छाप

विदेशों पर रवीन्द्र की छाप तो गीतांजली ने जमा दी थी । पर इसके अतिरिक्त रवीन्द्र की अंग्रेजी भाषा की रचनाओं का अंग्रेजों पर और भी गहरा प्रभाव पड़ा । आपकी लेखन-शैली और आपका विषय प्रतिपादन मौलिक प्रभावपूर्ण और सामिप्राय होता था ।

अब रवीन्द्र एक स्थान पर बैठ कर कोई ठोस सेवा करना चाहते थे । १९०१ में आपने बोलपुर में एक ब्रह्मचर्याश्रम खोला । १९१३ में विश्व पुरस्कार से जो धाराशि मिली, आपने इसी आश्रम को दान कर दी थी । आज यही आश्रम 'शान्ति-निकेतन' नाम से विश्वविख्यात विश्वविद्यालय माना जाता है । विदेशों से आज यहां पढ़ने आते हैं । ससार की प्रायः सभी भाषाएं यहां पढ़ाई जाती हैं । कदाचित् इसीलिए इसे 'विश्व-भारती' भी कहते हैं ।

आर्ष शिक्षा पद्धति का पुनः संस्थापन

शान्ति निकेतन में आर्ष-पद्धति के अनुसार खुले में बालक-बालिकाओं को साथ २ शिक्षा दी जाती है । विद्याध्ययन की शैली बड़ी स्वतन्त्र है । इस आश्रम के ढंग की सभी विद्वान् भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं ।

डाक्टर की उपाधि और सर की पदवी

कलकत्ता विश्वविद्यालय ने आपकी विभिन्न सेवाओं के उपलक्ष्य में आपको डाक्टर की उपाधि से विभूषित किया । भारत सरकार के 'सर'

की पदवी प्रदान की। परन्तु आपने इस पदवी को १९१९ में सरकार की स्वार्थमय अत्याचारपूर्ण नीति के विरोध में ठुकराकर लौटा दिया।

मागीरथ-व्रत

टैगोर न केवल भारत के अपितु देशकाल की सीमा से मुक्त विश्व के और त्रिकाल के व्यक्तित्व वाले पुरुष थे। आपने १९१० में मिन २ देशों संस्कृतियों में ऐक्य स्थापित करने के उद्देश्य से अमेरिका की यात्रा की। संसार का भ्रमण किया। इस कार्य में आपको प्रायः १६२०-१६३० तक १० वर्ष का समय लगा। संसार ने टैगोर का बड़ा सम्मान किया, मानपत्र दिये। आप जापान-रूम और ईरान भी गये। जहाँ २ आप गये आपके सांस्कृतिक-ऐक्य के प्रस्ताव का आदर हुआ।

सर्वस्व-त्याग और देन

१९२१ में आपने अपनी सारी सम्पत्ति विश्व-भारती को दान कर दी। विश्वभारती विश्व कवि टैगोर की अमर-निशानी है। नालन्दा और तक्षशिला के पश्चात् भारत के विद्या और ज्ञान गौरव का संसार में यदि संरक्षण किसी ने किया तो विश्वभारती ने। राजनीति, विज्ञान, कलाविधि आदि की शिक्षा के लिए आज जबकि अन्य देश पश्चिम का मुख देखते हैं, भारत की प्राचीन ज्ञानगरिमा के प्रकाश का दीपक चाहे धीमा २ ही सही विश्वभारती के द्वार पर अपने क्षीण आलोक में संसार के लिए प्रकाश देने में सक्षम है। इस धीमे प्रकाश में से ही एक दिन वह अलोक पुंज निकलने को है जो भौतिकता के अंधकार में भटकते हुए संसार को सत्य पर ला सकेगा।

करुणा के किनारे अपर अशोक

विश्वकवि का हृदय विश्व जैसा ही विशाल था। उसका अपना कोई नहीं, पर विश्व भर उसका अपना था। उनका संकोच विस्तार में बदल चुका था। उनका देश-प्रेम विश्व-प्रेम था। दूसरे महायुद्ध ने उनको दुःखी बना दिया था। विश्व-प्रेम का आसाधक इस चीत्कारमय हृदन को कब सह सकता था। मनुष्य की मनुष्य हत्या करे, अपने जीवन के लिए अन्य का जीवन लिया जाय ऐसे पैशाचिक युग में विश्व कवि जैसे व्यक्ति कब सुखी रह सकते थे। परन्तु, बुढ़ापे के कारण, सिवा ईश्वर से शान्ति स्थापन के लिए प्रार्थना करते रहने के कर भी क्या सकते थे। हाँ, उनकी वाणी अब भी

युवती थी, वह बराबर शान्ति-संदेश, प्रेम, सौजन्य, त्याग और विश्वबन्धुत्व का गीत गाती रही ।

इस अवसर पर आपने एक बड़े मार्मिक शब्दों में अपील निकाली । यह अपील जिसने पढ़ी उसका मन बदल गया । वह शान्तिदूत बन गया । विश्वकवि स्वयं वृद्ध थे पर उन्होंने कई युद्धकों को शान्तिदूत बना दिया । विश्व उनके शब्दों को सुनकर एक क्षण स्तब्ध और मननशील हो जाता था । यह कम बात न थी, भारत के प्राचीन गौरव के अनुकूल विश्वकवि का यह समादर हमारे लिए आज अभिमान का कारण है ।

प्राचीनता के पुजारी

टैगोर ने विश्व भ्रमण किया पर एक बात जो उनमें देखी वह बड़ी विचित्र थी कि उन्होंने किसी अन्य देश की संस्कृति की नकल नहीं की । आज के भारतीय युवक के लिए यह मूक-संदेश उपेक्षा की वस्तु नहीं होनी चाहिए । हमें ससार की सभी अच्छी बातों का समादर करना है, पर अपनेपन को बलि चढ़ा कर नहीं । विश्वकवि की यह वह दूसरी देन है जिसके लिए भारत सदा उनका ऋणी रहेगा । उनको इसी कृति में उनका स्वदेश-प्रेम इकाई का रूप लेता देखा जाता है । अन्यथा वे तो विश्व-प्रेमी थे । भारतीय सभ्यता को आपने परखा था और जीवन के एक-एक कण पर उतार रखा था । आपका विश्वास था विश्व को यदि कोई देश या द्वीप शान्ति दे सकता है तो भारत या एशिया ही हो सकता है ।

गांधीगुरु

आपने कभी राजनीति में प्रत्यक्ष भाग नहीं लिया, फिर भी गांधीजी आपको गुरुदेव कहा करते थे । ईश्वर जिसे बढ़ाना चाहता है ऐसे गुणों से अभिभूत कर देता है जो अन्यो में या तो होते ही नहीं या बहुत कम मात्रा में होते हैं ।

गांधीजी जैसा अध्यात्मवादी जिसे विश्व महात्मा कहता हो यदि किसी को 'गुरु' ही नहीं 'गुरुदेव' कहता है तो उसमें कोई दिव्य अथवा स्वर्गीय गुण अवश्य होना चाहिए ।

महात्मा गांधी ने राजनीति में जो कुछ किया वही रवीन्द्र ने साहित्य के द्वारा दर्शाया । गांधीजी का क्रियाकलाप भारत की चहारदीवांगी में

सीमित था पर टगोर का साहित्य विश्व में भारत का सिर ऊँचा उठाने का हेतु बना ।

रवीन्द्र-साहित्य

आप एक स्वप्नदृष्ट कवि थे फिर भी ससार के कठोर सत्यों से दूर न थे । यही कारण है आपके साहित्य में ससार में मुँह मोड़कर डरपोक की भाँति भाग जाने वाली वृत्ति दिखाई नहीं देती बल्कि सात्विक क्रियाशीलता टैगोर साहित्य की एक विश्वमान्य विशेषता रही हैं । हमारे राष्ट्रकवि मैथिली-शरण का तो कहना ही यह है कि आप अपने कला-कौशल से 'भव में नव वैभव व्याप्त कराने' आये थे ।

डा० राधाकृष्णन् के शब्दों में रवीन्द्र का सिद्धान्त था—If we are to dethrone the despot outside we must destroy the throne within ourselves which we have built for him. No tyrant can rule the free mind. "अर्थात् यदि हम बाहरी अत्याचारी को सिंहासनच्युत करना चाहते हैं तो हमें अपने उस सिंहासन को छिन्न-भिन्न कर देना चाहिए जो उसके लिए हमारे हृदय के भीतर बिछाया हुआ है । मन में जो स्वतन्त्र है उस पर कोई अत्याचारी शासन नहीं कर सकता ।"

टैगोर के मन में स्वतन्त्रता के लिए बड़ा ऊँचा स्थान रहा है । उनकी राष्ट्रीयता संकुच और अन्धी नहीं थी । वे राष्ट्रीय प्रेम के पीछे दूसरे का रक्तपात करने के पक्ष में न थे । वे तो सारे विश्व को प्रेम-सूत्र में बांधने के पक्षपाती थे ।

रवीन्द्र की कला-त्रिवेणी

रवीन्द्र कला के पारखी, उत्पादक और उपभोक्ता तीनों एक साथ थे । काव्यकला और संगीत के अनुशीलन से उन्होंने समाज में मानव को पुच्छविषाणहीन पशु होने से त्राण दिया । उनकी कला में चित्र का योग कला की त्रिवेणी का योजक था । वे साहित्यकार, चित्रकार और संगीतकार भी एक साथ ही थे । वास्तव में रवीन्द्र की कला का लक्ष्य अन्तर्मुखी था । इसी से उनके पास अभाव रहते हुए भी कोई अभाव नहीं रहता था । वे कल्पना के द्वारा अभाव की पूर्ति कर लेते थे । कवि थे न फिर ऐसा क्यों न करते !

हिन्दी और रवीन्द्र-कला

रवीन्द्र की कला ने हिन्दी साहित्य को बहुत गहरा प्रभावित किया है। प्रमाद कवि का रहस्यवाद, रवीन्द्र का मिस्टीसिज्म ही तो है। अंग्रेजी कवियों का मिस्टीसिज्म (रहस्यवाद) बंगला भाषा में रवीन्द्र के हाथों में बत-सवार कर छायावाद बना और हिन्दी में उसने एक युग को प्रवृत्त किया। हिन्दी साहित्य का उत्तरकालीन गीत-साहित्य रवीन्द्र की शैली से बहुत प्रभावित हुआ और हिन्दी कविगण आनन्द की खोज में बाहर की अपेक्षा भीतर का अनुष्ठान मुख्य समझने लगे।

बड़ा बालक

रवीन्द्रनाथ को ८१ वर्ष की वय में भी अभिनय के प्रति प्रेम था। वे तो ससार को ही एक रंगमंच मानते थे। ससार के सारे व्यवहार उनकी दृष्टि में अभिनय थे। उनकी दृष्टि में अभिनय जगत् का स्वभाव था। भला अस्वाभाविक कैसे बनते। एकबार इसी आयु में वे अपनी मडली लेकर दिल्ली अभिनय करने गए किन्तु महात्मा गांधी को यह बात उचित न लगी कि कवि इतनी अवस्था में अभिनय का कष्ट उठावे। रवीन्द्र का सकल्प था कि नाटक खेलकर शान्तिनिकेतन का अर्थमकट दूर कर लिया जाय। उनका लक्ष्य किसी के आगे हाथ पसारना न था इसी से यह आयोजन किया गया था। परन्तु गांधीजी ने उन्हें अभिनय करने का कष्ट न देकर उनकी इच्छित धनराशि का पूर्ति कराने में सहयोग दिया।

रवीन्द्र का उत्साह, उनका क्रीडा प्रेम, उनके हृदय में विश्वास की दृढ़ता बालक जैसी थी। उन्होंने कभी निर्बलता और निरुत्साह का अनुभव नहीं किया। ये बातें किसी साधारण व्यक्ति में नहीं देखी जा सकती। सचमुच रवीन्द्रनाथ टैगोर मानवरूप में सिद्धपुरुष थे—ईश्वर का विशेष अंश उनमें प्रस्फुटित रहता था। वे युगपुरुष और समाज के पथ-निर्माता थे।

यश-शरीर और लोकनिधि

विश्वकवि का पार्थिव शरीर ७ अगस्त १९४१ को सदा के लिए हम लोगों से विरग हो गया किन्तु उनका यश-शरीर उनकी रचनाओं में, उनके क्रियाकलापों के सुपरिणामों में, उनकी देशसेवाओं में और उनके विश्वविख्यात 'शान्तिनिकेतन' में आज भी भारतीयों के मन के सिंहासन

पर विराजमान और भासमान है। यही इसी कला के तपस्वी की सबसे बड़ी वह देन है जो देश को सदा जीवनदान देती रहेगी। ऐसे चरित्र न केवल अपने ही देश को अपितु अखिल मानव-समाज को प्रेरणा देने आते हैं, और चले जाने के पश्चात् ऐसा आदर्श छोड़ जाते हैं जिसका अनुकरण करके लोग अपना मार्ग प्रशस्त कर सकें। कालिन्द्र रवीन्द्र ऐसी ही गिधियो में गये।

: = :

लौह-लेखनी के धनी—आचार्य चतुरसेन

कलाकार के रूप में देकर सरस विचार।

चतुरसेन ने रच दिये कई नए संसार॥

—कुमार

नित्य ही जीवन में अनेक आश्चर्यजनक दृश्य दृष्टिपथ में आते हैं, कुछ क्षणिक महत्त्व रख कर धूमिल पड़ जाते हैं, ध्रुवतारे की भाँति अक्षर हो जाते हैं। सरस्वती-साधना कठिन है, प्रारम्भ में इस मार्ग पर चल पड़ना भी अत्यन्त साहस का कार्य है, परन्तु, एक बार जिस सेवी पर मां वीणापाणि के वरदहस्त की शीतल कल्याणमयी छाया हो गई, उसका धन्य भाग, वह सृष्टि बनकर संसार को गौरव से आप्लावित कर देता है। ऐसे ही हैं, आचार्य चतुरसेन, व्युत्पन्नपति प्रतिभासम्पन्न।

जन्म

बुलन्दशहर के निकट चादोख ग्राम में २६ अगस्त सन् १८९१ ईस्वी में आचार्य ने बालक रूप में इस सृष्टि में पदार्पण किया था। चतुरसेनजी का कुंडली के अनुसार नाम चतुर्भुज था, ज्योतिषियों ने नक्षत्र-योग देख कर बालक का भविष्य महान बतलाया था, और गच्च भी है आचार्य चतुरसेन ने चतुर्भुज की भाँति ही साहित्य सृजन किया। किसी द्विभुज का इतना सामर्थ्य

भी नहीं। आचार्य की दो भुजाएँ सबके समान लौकिक थी तथा दो अलौकिक जिनसे वे सृष्टि के अतुल क्षेत्र से साहित्य-सामग्री एकत्रित किया करते थे, अतः वे सच में ही चतुर्भुज थे।

विचित्र समन्वय

चतुरसेनजी की शिक्षा कई स्थानों पर हुई, सिकन्दराबाद के निकट एक छोटे से ग्राम रसूलपुर में उन्होंने अक्षराभ्यास किया, सिकन्दराबाद में उन्होंने अपनी पाठशाला की शिक्षा ग्रहण की। इसके पश्चात् सिकन्दराबाद के ही गुरुकुल में प्रवेश किया। यही आचार्य ने संस्कृत का अध्ययन किया। परन्तु गुरुकुल की पढ़ाई से आचार्य समन्वय न कर सके और पलायन करना पड़ा, भाग कर काशी पहुँचे। प्रसिद्ध डा० केशवदेव शास्त्री से संस्कृत अध्ययन किया तथा केशवदेव के अमेरिका चले जाने पर पं० जीवाराम तथा श्यामलालजी से संस्कृत व्याकरण और साहित्य का अध्ययन करते रहे। इसके पश्चात् सन् १९१० में चतुरसेनजी आयुर्वेद के अध्ययन के लिए जयपुर आए। जयपुर का राजकीय संस्कृत महाविद्यालय उस समय स्वर्गीय स्वामी लक्ष्मी-रामजी के कारण प्रख्यात था। स्वामीजी को आयुर्वेद का अपूर्व ज्ञान था। इन्हीं स्वामीजी की सेवा में रह कर चतुरसेनजी ने आयुर्वेद में पूर्णता प्राप्त की। जयपुर में ही आचार्य ने संस्कृत का अध्ययन भी पूर्ण किया। इस प्रकार आचार्य चतुरसेन शिक्षा के अनुसार वैद्य बने तथा सिकन्दराबाद आकर चिकित्सा कार्य प्रारम्भ किया। किसे ज्ञात था कि वैद्यप्रवर आचार्य चतुरसेन एक दिन भारत के महान् उपन्यासकार होंगे। ऐसा विचित्र समन्वय था आचार्य के व्यक्तित्व में चिकित्सक और साहित्यिक का, एक वैज्ञानिक और साहित्यिक था। व्यक्तित्व की इस विविधता के कारण ही उनके साहित्य में भी विविधता है। उन्होंने वैज्ञानिक उपन्यास लिखे खग्रास अभी प्रकाशित हुआ है और इसकी प्रेरणा उनके वैज्ञानिक व्यक्तित्व ने ही दी होगी इसमें कोई संदेह नहीं।

साहित्यिक प्रेरणा

हमारे जीवन में कुछ करने की प्रेरणा के क्षण आते ही रहते हैं। प्रतिभासम्पन्न सहृदय इन क्षणों का समुचित लाभ उठाते हैं तथा उनका हृदय उन्मुक्त हो जाता है। अन्य जीव रुद्धकपाट लिए जीवन में प्रेरणा ग्रहण नहीं करते। चिकित्सक आचार्य चतुरसेन को साहित्यिक बनने की प्रेरणा कैसे

मिली, उनका साहित्यिक व्यक्तित्व कैसे विकसित हुआ यह भी कुछ ऐसे ही क्षणों की प्रेरणा है। आचार्यजी ने न किसी प्राच्य लेखक से कुछ सीखा न पाश्चात्य लेखक से कुछ ग्रहण किया, न इस मार्ग पर उनका कोई गुरु है। वास्तविक प्रेरणा उन्हें उनके अन्तःकरण ने दी जब वे प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर फैली हुई महामारी तथा प्लेग के रोगियों की चिकित्सा में संलग्न थे। महामारी की भयकर व्यापकता, अनेक प्राणियों का क्षणों में दम तोड़ देना, बड़ा हृदय हिलाने वाला दृश्य रहा होगा। चिकित्सक होने के कारण चतुरसेनजी को यह सब निकट में देखने का अवसर मिला। मरते हुए प्राणियों को देखकर जो करुणा आचार्य के हृदय में उत्पन्न हुई उसी के प्रबल प्रवाह में उनका मुग्न साहित्यिक जाग पड़ा। संस्कृत के आदि कवि महर्षि वाल्मीकि में भी कवि का जागरण कौञ्चमिधुन-मृत्युजनित करुणा का परिणाम था। उसी प्रकार की प्रेरणा ने चतुरसेन का मार्ग प्रशस्त किया। आचार्य ने प्लेग के दिनों में ही अपना सर्वप्रथम उपन्यास लिखा, इसमें प्लेग और महामारी के अत्यन्त मर्मन्तिक विवरण थे जो आचार्य के आखों देखे थे, इनमें अनुभूति की उष्णता थी तथा प्रत्यक्ष दर्शन की सत्यता। परन्तु दुर्भाग्य से यह कृति हिन्दी जनता के सामने न आ सकी। श्रीकृष्णदत्त पालीवाल की उत्तरदायित्वहीन लापरवाही से इसकी हस्तलिखित प्रति ही खो गई। छपित रूप में सामने आने वाला, आचार्य का, सर्वप्रथम उपन्यास 'हृदय की परख' था।

चिकित्सा ने अभी आचार्यजी के साहित्यिक को विकसित होने में बाधा नहीं दी। जीवन के अनुभवों से साहित्यकार रस संचित करता है। अनुभव के कारण ही साहित्य में प्राण-प्रतिष्ठा होती है तथा साधारणीकरण होता है। चिकित्सक होने के कारण आचार्य चतुरसेन शास्त्री का अनेक प्रकार के व्यक्तियों से कार्य पड़ता था, इसीलिए उनका सम्पर्क राजघरानों से भी हुआ कि जिसके फलस्वरूप उनका आवागमन रनवासों तक में भी रहा। चिकित्सक का कार्य अत्यन्त सूक्ष्म होता है, अनेक लोगों की भीतरी बातों को जानने का अवसर मिलता है। प्रभावशाली व्यक्तियों की दुर्बलताएँ, मूर्खताएँ, कुत्साएँ तथा सद्भावनाएँ ज्ञान होती हैं। इसी प्रकार के अनुभवों से आचार्य चतुरसेन को भी मानव-मन के अध्ययन करने का अवसर मिला और ऐसे सत्य अध्ययन के कारण ही उनकी लेखनी में इतना बल आया। उनकी लेखनी लौह लेखनी कहलाने लगी। "दुखवा कासे कहूँ" आचार्य चतुरसेन की प्रसिद्ध

कहानी है उसकी प्रेरणा के अन्तर में भी शास्त्रीजी का प्रत्यक्ष अनुभव ही है, इसे स्वयं शास्त्रीजी के मुख से सुनना ही उचित है :—

“एक रोगिणी राजकुमारी को देखने जब मैं अन्तःपुर पहुँचा, तो मैंने देखा, मकड़ी के जाले के समान परिधान में एक प्रकार से वह नगी उस वक्ष में दीख रही थी और उसके अंग पर लाखों रूपयों के जवाहरात थे। इतने बड़े-बड़े मोती मैंने कभी न देखे थे, अगूर के बराबर। “दुखवा कासे कहूँ” कहानी में मैंने उसी राजकुमारी को, उसके सारे ही शृङ्गार-विलास सहित अपने पाठको के सम्मुख ला खड़ा किया है।”

एक नहीं अनेक अनुभव आचार्य को उनके चिकित्सा-कार्य के कारण हुए, जिनके कारण उनकी साहित्यिक अंतर्ग्रंथी उन्मुक्त हो गई, जहाँ एक बार वह उन्मुक्त हुई वहाँ पूर्णप्रवाह निस्तृत हो चला। अन्य लोगों की दुर्बलताओं ने आचार्य के ‘अहं’ को पुष्ट किया और यह अहं इतना प्रबल हुआ कि उनके “हृदय की प्यास” और “आत्मदाह” उपन्यास में उनका यही अहं रूप धर कर प्रकट हो पड़ा। यही अहं कभी-कभी साहस भी बनकर व्यक्त हुआ है। इसी कारण वे “बहते आंसू” उपन्यास में पतितों के सरक्षक हो गये हैं।

अतीत की ओर रुचि

मानव-पूजा ने शास्त्रीजी को अतीत के प्रति अनुरक्त बना दिया, वे इतिहास में रुचि लेने लगे। बुद्ध के मानव-प्रेम ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया। बौद्ध-संस्कारों से प्रभावित होकर उन्होंने दो चार कहानियाँ भी लिखी इन्हीं कहानियों में ‘अम्बपाली’ कहानी भी है और यही कहानी आचार्य चतुरसेन की हिन्दी में सर्वप्रथम कहानी है। इसी प्रकार ‘वैशाली की नगर वधू’ उपन्यास है। यह उपन्यास वास्तव में, बहुत सुन्दर बन पड़ा है। लेखक स्वयं इसे अपना अन्यतम उपन्यास मानता है। ‘गोली’ उपन्यास भी राजस्थान के अतीत की कहानी है। इन सभी उपन्यासों में जीवन का सुन्दर चित्रण है। वास्तव में आचार्य चतुरसेन शास्त्री जीवन-कला के चतुर चितरे हैं।

अदम्य साहस

आचार्य को अपने व्यक्तित्व तथा आत्मा पर बहुत विश्वास था, वे अवखड़ थे। श्री कन्हैयालाल मिश्र ने उन्हें “कड़ुवा अमृत” कहा है और वास्तव में ठीक भी है। एक बार पंजाब हिन्दी साहित्य-सम्मेलन में उन्हें बड़े आग्रह से बुराया गया, वे गए, आग्रहपूर्ण मिमन्त्रण को अस्वीकार भी कैसे

करते । जिस गाड़ी से वे गये उसी से सम्मेलन के होने वाले अध्यक्ष श्री गणेश वासुदेव मावलंकर भी गए थे । स्टेशन पर अपार जन-समूह श्री मावलंकरजी के स्वागत के हेतु एकत्रित हुआ था । मावलंकरजी पर अतुल पुष्प वर्षा हुई । सध्या को मावलंकरजी का सम्मान राजकीय ढंग से हुआ । बड़ी-बड़ी प्रशंसाएं की गईं । आचार्य चतुरसेन ने भी स्वागत में कुछ बोलने को कहा गया । शास्त्रीजी मंच पर आए और गद्-गद् शब्दों में बोले—

“मावलंकरजी की इस बारात में आकर बहुत प्रसन्नता हुई । दूल्हा तो सुन्दर है ही बारात भी खूब सजी है और प्रबन्ध भी शानदार है पर साहित्य रूपी दुलहिन इस धूमधाम में ऐसी दब गई है कि छुड़-मुड़ सी धूँध में लिपटी दबी बैठी है—कहीं दिखाई नहीं देती ।”

कितना साहस है, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन और हिन्दी के अनन्य सेवकों का सम्मान न होकर केवल लोकसभा के अध्यक्ष का राज्यकीय सम्मान, हिन्दी के प्रति इस अन्याय पर शास्त्री जैसे प्रबल आत्मा वाले व्यक्ति ही आवाज उठाने का साहस कर सकते थे । इसी प्रकार हिन्दू-विद्यालय में एक परिपद् में भाषण देने के लिए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने आपको निमन्त्रित किया । भाषण में आपने कहा—

“बाणभट्ट की आत्मकथा के लेखक श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी है और हिन्दी साहित्य की भूमिका के लेखक भी श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी है । क्या ये दोनों एक ही हैं ? यदि एक ही हैं, तो मैं कहता हूँ कि इनमें से एक ही पुस्तक उनकी लिखी हुई है, या तो पहली या दूसरी, दोनों पुस्तकें एक लेखक की नहीं हैं । मैं चाहता हूँ कि आप इस पर खोज करें ।”

अपने मत की इतनी स्पष्ट अभिव्यक्ति और इतने स्पष्ट शब्दों में कर सकना सरल नहीं है और जबकि वह व्यक्ति भी सामने बैठा हो जिसके लिए कहा जा रहा है । आचार्य चतुरसेन वास्तव में सशक्त आत्मा वाले व्यक्ति थे, अपनी जीवन अनुभूतियों को भी उन्होंने अपने उपन्यास-साहित्य में इसी स्पष्टता और सशक्तता से उतारा है । किसी के मुँह पर उसकी जैसी कहना चतुरसेन ने कभी न जाना था । वे अपने में महान् थे । उत्तर-प्रदेश के गवर्नर श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी से भी आपकी भेंट इसी प्रकार हुई थी । आपने स्पष्ट लिखा था मैं “सोमनाथ” के लेखक श्री

मुंशी से मिलना चाहता है—गवर्नर श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी से नहीं, और साहित्य तथा साहित्यिक का मान समझने वाले आदरणीय मुंशीजी ने स्वयं द्वार पर आकर आचार्यप्रवर चतुरसेन का स्वागत किया था। ऐसा था आचार्य का व्यक्तित्व—ऐसे लौह-व्यक्तित्व वाले की लेखनी ही लौह-लेखनी कहला सकती है। हिन्दी इस महान् साहित्यसेवी को सदैव स्मरण रखेगी।

वात्सल्य

इतने स्पष्टवादी तथा प्रबल आत्मवान् व्यक्तित्व के साथ आचार्य चतुरसेन का एक कोमल पक्ष भी है और वह है उनका वात्सल्य—भाव। आचार्य को सन्तान—सुख बहुत बड़ी आयु में हुआ। वे अपनी पुत्री को लाड से “पुत्रा” “बेटा” इत्यादि संबोधनों में बुलाते थे। अपने अनुज की सन्तानों के प्रति उनका अपूर्व स्नेह था। ये सन्तानें तीन थी—एक लड़की और दो पुत्र। आचार्य इन्हें देख फूले न समाते थे। हिन्दी की लेखनी तो प्रारम्भ में ही अभागी रही है, कभी-कभी आचार्य जी को भी रूपयों की कमी रहती थी तब भी वे इन बालकों की आवश्यकताओं का पूर्ण ध्यान रखते थे तथा अपने व्यय को रोककर इनकी पूर्ति करते थे। बच्चों के प्रति उनका मन अत्यन्त कोमल था। परिवार में सर्वप्रथम बालिका हुई उनके छोटे भाई भद्रसेन जी को। आचार्य ने उसका शारदीय चन्द्रतुल्य-वर्ण देख, उसका नाम शरदकुमारी रक्खा था—ढाई वर्ष की आयु में ही वह चल बसी, उसके मृत शरीर को गोद में लिटाये विक्षिप्त की भाँति आचार्य दो घण्टे बैठे रहे। उसके पश्चात् भी उस बालिका पर एक कविता लिखी थी, एकान्त में, सबसे भिन्न, व उस कविता को पढ़ते थे तथा उस बालिका की स्मृति में आसू बहाया करते थे। अपने छोटे भाइयों के प्रति भी उनका मन इसी अनुपम वात्सल्य से परिपूर्ण था। वे सब अभावों को सहकर भी परिवार का पालन करते रहे—पूर्ण प्रेम से—प्रसन्नता से।

साहित्य-साधन

श्री कपूर “शुभेन्दु” ने आचार्य चतुरसेन को हिन्दी का ‘ड्यूमा’ कहा है। ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जिस पर आचार्य चतुरसेन ने न लिखा हो। उनके लिखे बत्तीस उपन्यास हैं। चौबीस कहानी संग्रह, सात गद्य काव्य और अठारह—धर्म, इतिहास, समाज तथा राजनीति पर लिखी पुस्तकें हैं।

पांच पुस्तकें आत्म-चरित्र तथा चरित्र सम्बन्धी हैं। इसके अतिरिक्त दस नाटक, आठ एकांकी नाटक और चिकित्सा-स्वास्थ्य इत्यादि पर तो न जाने उनके, कितने ग्रंथ हैं। देखा जाय तो आचार्य चतुरसेन की प्रतिमा बहुमुखी है—वे विचारक हैं, वैज्ञानिक की विश्लेषणात्मक बुद्धि रखते हैं—उन्होंने दर्शन को भी समझा है। अतः उनकी रचना—शक्ति सभी क्षेत्रों में प्रवाहित हुई है।

आचार्य का सम्पूर्ण साहित्य अनुभूति से ओतप्रोत है। उन्होंने जीवन की पाठशाला से ही सब कुछ सीखा। ससार ही उनका गुरु है। ससार से लेकर उन्होंने ससार को ही सब कुछ दिया है। ऐसा त्यागी, निस्पृही, अपने लिए कुछ भी नहीं करने वाला, हिन्दी साहित्य के भण्डार को ही पूर्ण करता रहा। इस महान् साहित्य-साधना के पीछे चतुरसेनजी का परिश्रम निहित है। रात्रि के ग्यारह बजे से दो बजे तक ही उनका निद्राकाल होता था। प्रातः दो बजे से निरन्तर आठ बजे तक उनकी लेखनी चलती थी। वह भी जब विश्राम लेती थी जब उनकी पत्नी आकर स्वयं उसे लेकर रख न दे। दिन भर साधना, रात भर साधना—कैसा महान् था उनका साहित्य प्रेम, जिसके पीछे वे भोजन तथा निद्रा भी भूल चुके थे।

मृत्यु के दो दिन पूर्व तक आचार्य लिखते रहे, पढ़ते रहे—ऐसा था उनका साहित्य के प्रति अनुराग। चतुरसेनजी जीवन के सत्य अध्ययन के प्रति जागरूक थे, अनुरक्त थे। अस्पताल के साधारण रोगियों के कक्ष में लेटे हुए भी वे अन्य रोगियों की जीवनचर्या में 'प्लॉट' का अनुसन्धान करते रहे। आसन्न मृत्यु को देखकर भी जो साहित्यरचना की बात सोच रहे हैं, 'प्लॉट' का ध्यान कर रहे हैं, मृत्यु भला उनको कैसे नष्ट कर सकती है? इस प्रकार की उपेक्षा देख कर तो मृत्यु भी सकपका गई होगी। मा सरस्वती के ऐसे विचित्र साधक थे आचार्य चतुरसेन !

निरीश्वरवादी

आचार्य चतुरसेन आज के बुद्धिवादी और वैज्ञानिक युग के प्रतिनिधि थे—पक्के विचारवादी। आर्यसमाजी पिता के पुत्र होते हुए भी वे विज्ञान में विश्वास करते थे। ईश्वर में वे थोड़ा भी विश्वास न करते थे। यह भावना उनके उपन्यासों में भी छाया रूप से विद्यमान है।

चिकित्सक

कुछ लोग अपने व्यवसाय में असफल होकर अन्य व्यवसाय ग्रहण किया करते हैं, परन्तु चतुरसेनजी चिकित्सक के रूप में असफल होकर साहित्यिक नहीं बने। वे चिकित्सक थे, बड़े-बड़े लोग उनकी चिकित्सा में विश्वास रखते थे। राजा-महाराजाओं के यहाँ वे इसी कार्य के लिए जाते थे। अतः धन के लिए उन्होंने कभी नहीं देखा बल्कि जीवन के उत्तरकाल में जब वे पूर्ण लेखक बन चुके थे—कभी २ धन के लिए परेशान भी अवश्य रहे। साहित्य साधना उनकी शुद्ध रूप से अन्त करण के मुख के लिए थी। मन की अभिव्यक्ति ऐसे सशक्त व्यक्ति के लिए आवश्यक थी और उसके लिए साहित्य का माध्यम ही सफल साधन हो सकता था। इससे स्पष्ट है आप प्रैसे के लिये नहीं विनोद के लिए ही साहित्य रचना करते थे। वैसे चिकित्सा शास्त्र पर उनकी पुस्तकें तथा चिकित्सा कर्म में उनकी प्रसिद्धि उनके चिकित्सक रूप की सफलता का पर्याप्त प्रमाण है।

शवसान

जीवन के अन्त के दो दिन तक भी “आजकल” तथा ‘साप्ताहिक हिन्दुस्तान’ के लिए लेख लिखते रहे आचार्य। मृत्यु-शैया पर भी उनकी लेखनी उनके साथ रही। साधना के कारण, वास्तव में, लेखनी चतुरसेनजी की अनुगामिनी बन गई थी। अपने अंतिम दिनों में चतुरसेनजी का प्रोस्ट्रेट ग्रंथि का आपरेशन हुआ। वे अस्पताल में वार्ड सख्या तीन, बिस्तर नंबर बाईस पर लेटे थे। दिनाङ्क २ फरवरी १९६० को उनकी आत्मा नश्वर शरीर को तोड़कर उन्मुक्त हो गयी। हिन्दी ने अपना एक कर्मठ, प्रबल, अध्यवसायी एवं महान् सेवक खो दिया। आचार्य चतुरसेन चले गये पर उनका साहित्य हिन्दी पाठकों के समक्ष है। चतुरसेन स्वयं अपने पाठकों के समक्ष उपस्थित हैं। ऐसे महान् कर्मशील व्यक्ति कभी मृत्यु द्वारा पराजित नहीं होते। वे तो मृत्युंजय होते हैं। मृत्यु का कार्य है व्यक्ति को संसार से भिन्न कर देना, नष्ट कर देना, परन्तु ऐसे वीरों के समक्ष मृत्यु भी किकर्तव्यविमूढ़ हो जाती है क्योंकि वह नश्वर शरीर को नष्ट करके भी संसार की दृष्टि में उन्हें विस्मृत नहीं करा सकती है वरन् मरकर ऐसे महारथी अधिक उज्ज्वल और अमर हो जाते हैं और धरती पर आकाशीय ध्रुवतारे की भाँति अचल और स्थिर रहते हैं। हिन्दी ऐसे सुपुत्र महारथियों को पाकर गौरवान्वित रहेगी। धन्य है आचार्य प्रवर चतुरसेन और उनकी लेखनी।

जा रहा था। मानव-धर्म की रूपरेखा धूमिल होती दिखाई पड़ रही थी। तन्त्रवाद जोर पर था। चौरासी सिद्धों के झाड़फूक के ढोंग और कापालिक-मत ने देश को डावाडोल बना दिया था। न ब्रह्म को कोई जानता था न आत्मा को।

ऐसे समय दक्षिण भारत के पश्चिमी भाग में कोंकण प्रदेश में संवत् ८४४ वि० में एक प्रकाश-रश्मि फूटी।^१ कौन जानता था नम्बूद्रीवश के एक ब्राह्मण कुल में जन्म लेने वाला यह बालक समस्त भारत पर अपने ज्ञान बल से एक साथ द्वादश आदित्य का सा प्रकाश लेकर तप सकेगा और घोर अज्ञानान्धकार को छिन्न-भिन्न कर पुनः आस्तिकवाद का प्रकाश फैला कर सभी क्षेत्रों में मर्यादा ला सकेगा।

आज से १२०० वर्ष पूर्व अपने पाण्डित्य से जगत् को जगमगा देने वाले, बुद्धि और प्रतिभा के प्रतीक उत्तर मीमांसा के अद्भुत भाष्य करने वाले ससार के माने हुए एक मात्र दार्शनिक ये जगद्गुरु भगवान् शङ्कराचार्य ही थे जिन्होंने अपने तर्क बल से तर्क की ही भित्ति पर टिके हुए बौद्ध धर्म को पंगु बनाकर वैदिक धर्म का प्रचार करने में सफलता-प्राप्त की थी और वैदिक धर्म को एक बलिष्ठ प्रेरणा देकर नयी दिशा में मोड़ दिया था।

उषःकाल

श्री शङ्कर के पिताश्री का नाम शिवगुरु था। शङ्कराचार्य इन्हे कठिन तपस्या के फलस्वरूप प्राप्त हुए थे। इनके कोई सन्तान न थी इसलिये इन्होंने चिदम्बरम् के अधिष्ठातृ देव भगवान् श्री शङ्कर को प्रसन्न करके उनके प्रसाद रूप में ही शङ्कराचार्य को पाया था। पर आप कुछ ही दिन पीछे इस ससार को त्याग गए।

शङ्कराचार्य सात वर्ष की आयु में ही अपनी विधवा माता की अनुमति लेकर गृहस्थ जीवन से विरक्त हो गये और गुह गोविन्द मुनि के पास नर्मदा की गुफा में चले गये। वहाँ से वेदान्त का अध्ययन कर अपनी विलक्षण प्रतिभा से अपने गुरुदेव को प्रसन्न करने के पश्चात् आप काशी पधार गये।

१, कुछ विद्वानों का कहना है कि तामिल प्रान्त के चिदम्बरम् में कालटी ग्राम में इनका जन्म हुआ था।

जगद्गुरु-शंकराचार्य

ज्ञानज्योति चमका किया धरती का उद्धार ।

श्रीशङ्कर-अद्वैत मत वेद-शास्त्र का सार ॥

—सहृदय

शून्यवाद के घोर अन्धकार में वैदिक दर्शन फीके पड़ते जा रहे थे । वेदों और पुराणों से प्रतिपादित धर्म को पाण्डित्य का बल नहीं मिल रहा था । क्या राजनीतिक और क्या धार्मिक दोनों ही अवस्थाएँ बड़ी शोचनीयता को पहुँच गई थी । छोटे-छोटे राज्य आपस में सघर्षोन्मुख हो रहे थे, उत्तर में काश्मीर, नेपाल, कन्नोज, बिहार और बंग देशों के राज्य इस युग के कर्णधार बने हुए थे तो नीचे की ओर राजस्थान में गुहिलोत एवं चौहानों का उदय होने जा रहा था । दक्षिण में राष्ट्रकूट प्रबल बने बैठे थे । उधर मालवा में परमार वंश की तूती बोल रही थी । देश में एकसूत्रता का अभाव था । कोई ऐसा शक्तिशाली राज्य न था जो देश की राजनीति को एक दिशा में व्यवस्थित संचालन कर सकता ।

प्रायः यही अव्यवस्था धार्मिक-क्षेत्र की थी । वैष्णव, शैव, बौद्ध और जैन अपने २ सम्प्रदायों को बढ़ाने की उधेड़-बुन में व्यस्त थे । बौद्ध धर्म महायान और हीनयान शाखाओं तथा क्रमशः अपनी विज्ञानवाद और शून्यवाद तथा स्वतन्त्रिक एवं वैभाषिक उपशाखाओं में विभक्त हो रहा था । देश में बौद्ध धर्म का ही प्रचार अधिक था । देश में ही क्या बौद्ध धर्म की महायान शाखा का प्रचार तो तिब्बत, चीन जापान, मलयअन्तरीय, ब्रह्मा, कम्बोडिया, यव-द्वीप, बोनियो, फिलिपाइन जावा-सुमात्रा आदि द्वीपों तक में था ।

सामाजिक दृष्टि से भी वर्णसंकरता का अधिक वेग से प्रचार होने

काशी में मणिकर्णिका घाट पर कुछ वर्ष निवास किया। इस समय इनकी अवस्था केवल १२ वर्ष की ही थी। अनेक ब्रह्मचारी शिष्यों और सन्यासियों से युक्त भगवान् शङ्कर ने काशी के पंडितों पर अपनी घाक बिठा दी।

मध्याह्न

इस समय भारत में ऐसा कोई न था जो देश की स्थिति को काबू में ला सके। भगवान् शङ्कर ने देशसेवा का व्रत लिया और धर्म की नौका में उसे बिठाकर बड़ी कठिनाई से किनारे लगा पाया।

वेदान्त सूत्र, गीता और उपनिषदों का जैसा भाष्य शङ्कर ने किया वैसा आज से पूर्व कभी नहीं हो पाया था। इस भाष्य में ब्रह्म और आत्म की एकता का समर्थन किया गया था। ब्रह्म और आत्मा का एकत्व वास्तव में स्वामी शङ्कराचार्य की न केवल भारत को अपितु समस्त जगत् को एक अपूर्व देन है।

दिग्विजय

इसके पश्चात् श्री शङ्कर अपनी शिष्य मण्डली के साथ अपने मत का प्रचार करने लगे। यह नवीं शती भारतीय इतिहास में सांस्कृतिक पतन का समय था। इस समय भारतीय संस्कृति के उद्धार व जागरण के लिये शंकराचार्य जैसे विद्वान की बड़ी आवश्यकता थी। अपने प्रकाण्ड, तीव्र त्याग और अखण्ड ब्रह्मचर्य से श्री शङ्कर ने वेद-शास्त्र-प्रतिपादित धर्म की रक्षा और उद्धार किया, ज्ञान का ऐसा आलोक फैलाया जो आज १२०० वर्ष से अनेक विरोध वातावरणों के रहते भी वैसा ही चमक रहा है जैसा स्वयं भगवान् शङ्कर की उपस्थिति में आलोकित था।

शंकराचार्य के साथ उस समय शास्त्रार्थ कर सके ऐसा कोई पण्डित न था। फिर भी कुमारिल भट्ट जो वेदों के अद्भुत पंडित थे तथा उनके साथ मंडनमिश्र और उनकी पत्नी उस समय के प्रसिद्ध विद्वानों में गिने जाते थे। मंडनमिश्र की स्त्री ने श्री शंकराचार्य से शास्त्रार्थ भी किया था पर विजय उसे न मिल सकी।

इस प्रकार शंकराचार्य की दिग्विजय यात्रा में कोई बाधक न हो सका और वे हिमालय से कन्याकुमारी और अटक से कटक चारों दिशाओं में यात्रा करते हुए, चारों धामों—बदरीनाथ, जगदीश, रामेश्वरम् और

द्वारिका—का दर्शन करते हुए जगह—जगह शून्यवादियों का खण्डन करते हुए, ब्रह्मवाद की विजय—पताका फहराते हुए पुनः एकबार अपने जन्मस्थान को लौटे ।

भविष्यवाणी

एक समय की घटना थी कि शंकराचार्य की माता ने विधवा होने पश्चात् अपने एकमात्र आधार होनहार बालक शंकर की जन्म कुडली कुछ ज्योतिषियों को दिखालाई । पर जब उनकी विधवा माता ने यह जाना कि उनके पुत्र की बहुत ही कम आयु है तो उसके शोक का ठिकाना न रह गया । परन्तु, जगत् को मानवता का सन्देश देने वाले श्री शंकर पर इसका प्रभाव और भी अनुकूल पड़ा । उन्हें इस असार संसार से घृणा हो गई और वे जल्दी से जल्दी जनसेवा करने के लिए आतुर हो गये तथा माता से तपस्या करने के लिए अनुमति मांगी ।

माता का हृदय टुकड़े २ हो गया । वे अपने एक मात्र सहारे को मला कैसे छोड़ सकती थी, पर शंकर का आग्रह भी न टाल सकी और शंकर उनसे विदा हो गए । विदा होते समय शंकर ने कहा था—“मा मैं संसार में चाहे कहीं भी क्यों न रहूँ, तुम्हारा संस्कार मैं अपने हाथ से ही सम्पन्न करूँगा ।” मा का हृदय शांति से मर गया । वे उस दिन प्रतीक्षा करने लगी जब उनका प्यारा पुत्र उन्हें अपने हाथ से अग्नि के अंक में सदा के लिये विश्राम दिला देगा । लाचार हृदय की निराश का अन्त मृत्यु की गोद में ही होता है ।

जननी, जन्मभूमि

भारत वर्ष के कोने २ में अद्वैतवाद का प्रचार करके शंकराचार्य अपनी जन्मभूमि और आदरणीया जननी के दर्शनार्थ पुनः कालटी लौटे । यह वह समय था जब उनकी मानेश्वरी मृत्यु—शैया पर पड़ी अपने जीवन के अन्तिम श्वास ले रही थीं ।

माता ने पुत्र को देखा, हृदय उमड़ पड़ा, पर शंकराचार्य की प्रसिद्धि और नाम ने माता के हृदय में उनके वियोग—दुःख को कुछ हल्का कर दिया । आज मा ने बेटे को हृदय लगाया, स्तन्य बह चला । युवक शंकर, ७ वर्ष के बालक शंकर की स्थिति का आज फिर अनुभव करने लगे । लम्बे वियोग

के पश्चात् का यह क्षणिक वात्सल्यपूर्ण मिलन एक झलक देकर विलीन हो गया। शंकर की माता की माया सदा के लिये शंकर के शिर से हट गई। वे जानती अवश्य थे, पर एक बार वे सन्न, रह गये। फिर मायावाद के चक्र को ज्ञान-वाण में छिन्न-भिन्न कर शंकर ने अपनी जन्मदात्री की अन्त्येष्टि स्वयं अपने ही हाथों से की और कहा “मा, मैंने जैसा कहा आज आपका सस्कार अपने हाथ से सम्पन्न कर अपने आश्रित कर्तव्य का किसी सीमा तक पालन कर दिया है। आप मुझे अपनी ओर से मेरे अपराधों को क्षमा कर देना।”

श्री शङ्कर की मातृ-भक्ति नितान्त श्लाघनीय है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह उनके जीवन का अत्यन्त ही माधुर्यमय अङ्ग है। मातृभक्ति ने ही शङ्कर के जीवन को भक्ति भावना में आप्लावित किया। जीवन की उद्देश्य प्राप्ति का वे अपनी माता को ही आधार मानते थे।

जीवन का लक्ष्य

११ प्रसिद्ध और प्रमुख उपनिषदों का भाष्य लिखा, प्रस्थानत्रयी ब्रह्मसूत्र, गीता और उपनिषद् पर भाष्य लिखे और मायावाद का खण्डन किया। ये शङ्कर के वे कार्य थे जिन्होंने बौद्धों को कंपा दिया था बल्कि इस देश में सदा के लिए शून्यवाद को अस्त कर दिया था।

महापण्डित अर्जुनायन, दिग्नाग और आसग बौद्ध धर्म के स्तम्भ थे। शङ्कर-मत ने इन बौद्ध पण्डितों के प्रति समाज में अनास्था उत्पन्न करा दी। शङ्कर से पूर्व अर्जुनायन आदि बौद्ध पण्डितों के तर्कों के सामने कोई टिक नहीं पा रहा था। परन्तु अब उनके तर्क तूलवत् इधर-उधर फिर रहे थे।

शङ्कर का सिद्धांत शून्यवाद से दूर नहीं है, पर, शङ्कर ने लोकधर्म के साथ २ उसका सांस्कृतिक दृष्टि से उपदेश दिया। यही कारण था शङ्कर की बात समाज को रुचिकर लगी और बौद्धों का कथन नीरस, छूछा और आडंबर मय दीखने लगा।

शङ्कर-मत (अद्वैतवाद)

श्री शङ्कर ने सिद्ध किया कि जो कुछ है सब ब्रह्म ही ब्रह्म है और बताया कि ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी तत्त्व की सत्ता नहीं है। अपने इस कथन को उन्होंने शास्त्रसम्मत तर्कों के बल पर प्रचारित किया। परिणामः

यह हुआ कि उनका जीव-ब्रह्मैक्याद अर्थात् अद्वैतवाद भारत का कण्ठहार बन गया ।

माया को श्री शङ्कर ने मिथ्या माना है । कहा है—

“ ब्रह्म सत्ये जगत् मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः ”

वेदान्त का आधार ये चार ही हैं—ब्रह्म, जगत्, जीव और जीव ब्रह्म का ऐक्य । इनमें प्रथम सत्य, द्वितीय मिथ्या, तृतीय ब्रह्म और चतुर्थ दोनों का ऐक्य अथवा अद्वैतता ।

यह अद्वैतवाद वेदान्त का मूलमन्त्र है । यही एक ऐसा सिद्धांत है जिसे जानकर सब कुछ जाना जा सकता है । शङ्कराचार्य जी ने अपने सभी शाग्यो को इसी मत पर आधारित किया है । यही अद्वैतवाद वैदिक ऋषियों की वह आध्यात्मिक देन है जिसे शङ्कर ने नये ढंग से भारत को ही क्या समस्त विश्व को दिया । यदि शङ्कर न होते तो यह निधि नष्ट हो चुकी थी ।

व्याक्तित्व विश्लेषण

शङ्कराचार्य का महान् व्यक्तित्व, आलोक, असाधारण वैदुष्य विशाल चरित्र एवं अन्यतम और अमोघ काव्यशक्ति भारतीय कहलाने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए गौरव और अभिमान का कारण रहेंगे ।

अन्य रचनाएं

विवेक-चूडामणि, सिद्धान्तबिन्दुस्तोत्र और सप्तश्लोक आदि आपकी अन्य वे रचनाएं हैं जिन पर दार्शनिकों को अभिमान होता है । जो दार्शनिक इनके ग्रन्थों का पण्डित है आज पण्डित समाज में बड़ी प्रतिष्ठा से देखा जाता है ।

समस्या

श्री शङ्कर के सामने समस्या थी धर्म समन्वय की । इस समय बौद्धों की महायान शाखा अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व प्राप्त कर चुकी थी । उसमें बाहर के देवता, विचार धाराएं वेश-भूषाये और कलामान्यताओं ने स्थान पा लिया था । भारतीय धर्मों पर भी इस विविध समन्वय का प्रभाव पड़ चुका था । श्री शङ्कर के समक्ष प्रश्न था भारतीय संस्कृति की संरक्षापूर्वक एक ऐसे धर्म की स्थापना का जो विश्व में किसी को अमान्य न हो, पर जिस पर गहरी भारतीयता की छाप लगी हो ।

नालन्दा और तक्षशिला के विश्वविद्यालय अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के बौद्ध-संस्कृति समन्वित महान् शिक्षा संस्थान थे। देश-विदेश के विद्वान् इन विश्वविद्यालयों की छाप खाकर अपने आपको धन्य मानते थे। शङ्कराचार्य ने इन्हीं विश्वविद्यालयों पर पहिले अपनी घाक बिठाई और जब वे सफल हुए तो बौद्ध-संस्कृति के मंद और वैदिक अद्वैतवाद के स्रोत प्रबल बन गए। बौद्ध भिक्षु-भिक्षु-गणियां इधर-उधर छुटपुट रूप से बौद्ध धर्म का प्रचार करने लगे। अन्त में १२ वीं शती में बख्तियारखिलजी ने जब बिहार पर आक्रमण किया तब ये विश्वविद्यालय बौद्ध धर्म की कुछ रक्षा करते ही रहे, जनता में उसकी मान्यता वह न रह गई थी जो अद्वैतवाद को प्राप्त थी।

सत्य की जय

‘अनुभव की दृढ़ भित्ति पर टिका हुआ अनुभूत सत्य उपदेश में प्रमान भर देता है।’ श्री शङ्कर के लिए यह कथन अक्षरशः लागू होता है। श्री शङ्कर उन महान् निधियों में थे जिन्होंने मानव-जीवन की विचार-धारा को पलटा है। श्री शङ्कर का त्याग अनुपम था और उनका अध्ययन अपूर्व। उनके वक्तव्य में जादू था तो उनकी तर्क की तलवार में अचूक क्षमता।

श्री शङ्कराचार्य के वेदान्त का अध्ययन सन् ८०० से अब तक दार्शनिक दुनिया के अध्ययन का अपूर्व विषय बना चला आ रहा है।

निर्वाण

श्री शङ्कर ने चार मठ स्थापित किये। ये मठ भारत में आज भी बड़ी प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखे जाते हैं और इन मठों के अधिष्ठातागण आज भी श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य कहलाते हैं।

श्री शङ्कराचार्य का आलोक आज ज्यों का त्यों चमक रहा है यह कम आश्चर्य का विषय नहीं है। स्वामी शङ्कराचार्य का देहावसान ३२ वर्ष की अवस्था में ही हो गया था।

श्री शंकर जैसी विभूतियां किसी महान् उद्देश्य को लेकर ही भगवद्-प्रेरणा के फलस्वरूप जन्म लेती हैं और उनका कार्य सफल होते ही वे इस धराधाम से चली जाती हैं। कहना न होगा कि श्री शंकर की अवतार का उद्देश्य ३२ वर्ष में ही पूरा हो चुका था इसीलिए श्री शंकर की चसे गये।

ऐसे महापुरुषों के जीवन पीछे आने वाली पीढ़ियों को जीवन-निर्माण की दिशा में प्रेरणा देते हैं। श्री शङ्कराचार्य के जीवन के प्रति हमारी यही सच्ची श्रद्धांजलि होगी कि हम उनके उपदेशों पर चलकर अपने जीवन को सफल बनायें।

: १० :

आस्था के अवतार—स्वामी विवेकानन्द

रामकृष्ण से था मिला जिनको परमानन्द ।

ये विवेक-मय स्वयं वे साधु विवेकानन्द ॥

—सहृदय

हीरा ककड़ मिट्टी से ही उत्पन्न होता है। उस स्थान पर उस समय उसका मूल्य चाहे न हो पर समय आने पर, खान से हटने पर जब वह परिष्कृत हो लेता है, देश-विदेशों में अपना प्रकाश फैलाकर लाखों रुपए का हो जाता है।

हमारे चरित्रनायक का जीवन भी हीरे का ही जैसा था। वे १२ जनवरी, १८६३ को प्रातःकाल मकरसंक्रान्ति के दिन स्वनामधन्य विश्वनाथ-दत्त के घर कलकत्ते में सिमुलिया नामक स्थान पर जन्मे थे। बड़े २ पूजापाठ और मान्यताएं मानने के पश्चात् माता-पिता ने आपना मुख देख पाया था।

स्वामी विवेकानन्द का बचपन का अथवा सन्यास लेने से पूर्व का नाम नरेन्द्रनाथदत्त था। आप बचपन में बड़े फुर्तीले और ऊधमी थे।

होनी के अंकुर

एक बार नरेन्द्रजी को एक साधु मिला। उसने इनसे कपड़ा मांगा। नरेन्द्र के पास नया कपड़ा था जो उन्होंने उसी दिन पहिना था। वे देने को तैयार हो गये। मां ने बहुत रोका पर वे न माने। मां ने उन्हें कमरे में बंद कर दिया तब भी उन्होंने वह वस्त्र कमरे की खिड़की से फेंककर साधु को

ही दिया । माँ हार गई । बच्चे को उठाकर चूम लिया और बोली 'बेटा, दीनदुखियों के प्रति तेरा हृदय ऐसा ही रहैगा, मेरा यह आशीर्वाद है।' आगे चलकर यह उपकार-वृत्ति नरेन्द्र के जीवन का मुख्य लक्ष्य बन गई ।

नरेन्द्र परिश्रमी, धुन के पक्के, अध्ययनशील एवं शुद्ध चरित्र के थे । परन्तु अपनी टोली के नेता बनने का उन्हें चाव था । साथियों ने उनकी योग्यता देखकर बिना विरोध उन्हें अपना नेता चुनकर मानों उनके चाव को और भी बढ़ा दिया था ।

प्रतिभा

नरेन्द्र अभी इन्टर में ही पढ़ते थे, परन्तु अंग्रेजी विचारक हरबर्ट स्पेंसर के दर्शन की आलोचना लिख भेजने में उन्हें तनिक भी संकोच न हुआ । स्पेंसर ने उसे पढ़कर उनकी बुद्धि की प्रशंसा की ।

महापुरुष

भारत में अनेक महापुरुष उत्पन्न हुए हैं । जब २ देश में अंधकार छा जाता है, कोई न कोई महापुरुष जन्म लेकर उस अंधकार से देश को निकाल ही देता है ।

यह वह समय था जब राष्ट्र की स्वतन्त्रता का सपना कुचल दिया गया था । जातीय सम्मान नष्ट-भ्रष्ट हो गया था । लोग मन मसोस कर बैठ चुके थे । कुछ लोग अंग्रेजी शिक्षा के संस्कारों से अपने सारे इतिहास को भूलकर पश्चिमी ढांचे का मस्तिष्क बनाकर गुलामी में ही सुख का अनुभव करने लगे थे ।

ऐसे समय में एक सूर्य-रश्मि फूटी । उसके प्रकाश ने सभी को जग-मगा दिया । ये महापुरुष थे विवेकानन्द ।

दार्शनिक प्रश्न

बचपन से ही नरेन्द्र के मन में ईश्वर, जीव और जगत् सम्बन्धी प्रश्न उठने लगे थे । वे ईश्वर के दर्शन करना चाहते थे । इसी कारण सोचते थे वह कहां है ? कौन है ? दिखाई क्यों नहीं देता ?

इन शंकाओं का समाधान चाहने के लिये नरेन्द्र ब्रह्म समाज की समाओं में जाने लगे । परन्तु वहां उनको तृप्ति न हुई बल्कि उलटे संदेह बढ़ने लगे ।

इन संदेहों की निवृत्ति के लिये वे रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के पास भी गये। महर्षिजी ने उन्हें बहुत कुछ उपदेश दिये पर नरेन्द्र के हृदय पर उनका प्रभाव न पड़ा। इस बीच उन्हें किसी ने बतलाया दक्षिणेश्वर में एक महात्मा रामकृष्ण परमहंस रहते हैं, वे कदाचित् कोई मार्ग दिखा सकें।

जिन खोजा तिन पाइया

नरेन्द्र रामकृष्ण की खोज में लगे। भाग्य से परमहंस कलकत्ते आये। नरेन्द्र उनसे मिले और उन्हें 'चलो मन निज निकेतन' गाना सुनाया। परमहंस की कुछ कृपा हो गई। उन्होंने नरेन्द्र को दक्षिणेश्वर आने को कहा। नरेन्द्र अपनी इन्टर परीक्षा देकर दक्षिणेश्वर पहुँचे। और उनसे "आपने ईश्वर को देखा है?" यही प्रश्न जा किया। रामकृष्णजी ने हंसकर कहा—हां बेटे, मैंने ईश्वर का दर्शन किया है। वैसे ही जैसे तुम्हें देख रहा हूँ। तुम भी देख सकते हो। मैं तुम्हें दिखा सकता हूँ।"

नरेन्द्र को क्या चाहिये था? बुद्धि से ही यदि ईश्वर मिल सकते होते तो बुद्धिमानों की संसार में कमी नहीं है, पर, ईश्वर को किसी ने नहीं देख पाया। नरेन्द्र ने सोचा, आज तक किसी ने ऐसा नहीं कहा कि "मैंने ईश्वर को देखा है और मैं दिखा सकता हूँ।"

नरेन्द्र ने निर्णय किया कि मैं यहाँ रहकर देखूँगा कि ये महात्मा सच कहते हैं कि भूठ? और जो कहते हैं उसे कहाँ तक निर्वाह करते हैं?

रामकृष्ण परमहंस नरेन्द्र को अपना समझने लगे। उन्हें देखकर वे प्रसन्न हो जाया करते थे। उन्हें ऐसा लगता था मानों नरेन्द्र से उनकी जान-पहिचान रही हो।

घरेलू भ्रमटें

नरेन्द्र के पिता का देवलोक हो गया। नरेन्द्र पर आपत्तियाँ आ पड़ीं, मुकदमें चल पड़े। पैसा पास में न था बिचारे करते भी क्या। एक दिन ईश्वर का नाम लेकर मूखे ही सो रहे। जागे तो पुनः भगवान का नाम लिया। माँ ने कहा—“किस काम का है तेरा भगवान्, जो पेट भर भोजन तक नहीं दे सकता?”

नरेन्द्र तड़प उठे । दौड़े हुए रामकृष्ण के पास गये, बोले—“आप अपनी माताजी से मेरे लिए प्रार्थना कीजिये, मुझ से यह घरेलू कष्ट नहीं देखा जाता ।”

रामकृष्ण ने कहा—“अपन लिये तू आप मांग, काली माता के मन्दिर मे जा, जो चाहिए, जगदम्बा से निवेदन कर और माग ले, मुंह मिलेगा ।”

नरेन्द्र पर ब्रह्मममाज का प्रभाव था । मूर्ति में उन्हें विश्वास न था, पर स्वार्थवश वे गये । काली माता के सामने खड़े हुए पर विवेक, ज्ञान और वैराग्य के सिवा कुछ माग न पाये ।

नरेन्द्र के लौटने पर पता चला कि नरेन्द्र ने क्या मांगा ? रामकृष्ण ने पूछा, नरेन्द्र ने कहा—“जगदम्बा से दुनिया की चीजें माँगना मुझे न रुचा ।”

रामकृष्ण ने हसकर कहा—“मैं जानता था तू तुच्छ वस्तु माता मे नहीं मांगेगा ।” थोड़ी दूर हलकर पुनः कहा “अच्छा, जा तेरी घरलू झकटें सब समाप्त हो जायगी और तुझे खाने पहिने आदि का कष्ट न होगा ।”

ऐसा ही हुआ । गुरुद्वय नरेन्द्र के अनुकूल तय हो गये । घर में खुश-हाली हो गई ।

नरेन्द्र ने वैराग्य ले लिया । वे रामकृष्ण के पास आकर रहने लगे । दक्षिणेश्वर के पास काशीपुर में एक मकान ले लिया । वहीं भ्रजोपदेश का कार्यक्रम चलने लगा । नरेन्द्र अब सन्यासी थे और उनका नाम था अब स्वामी विवेकानन्द ।

कई दिन से रामकृष्ण कैसर से पीडित आ रहे थे । आज वे समाधिस्थ बैठे २ विवेकानन्द से बोल पड़े —“विवेकानन्द, इधर आ । आज मैं जाता हूँ, पर मेरे काम को पूरा करने का दायित्व तेरा होगा ।”

विवेकानन्द धर २ कापने लगे । उन्हें ऐसा लगा जैसे कोई प्रकाश-रश्मि उनमें प्रवेश कर रही है । रामकृष्ण परमहंस का ढाँचा समाधिस्थ था, पर वे नहीं थे । वे विवेकानन्द में समा चुके थे ।

विवेकानन्द ने संकल्प लिया । गुरु का बचन पूरा करने की कसूर किसी शिष्यों के साथ प्रचार करने निकले । काशी पहुँचे । वहाँ इनके लम्बे-अंगूठे की जेब में पड़ी कुछ पुस्तकों को खाने की साजगरी समझकर बन्दों ने इनका

पीछा किया, ये भागे, बन्दर और अधिक दौड़े। ये देखकर एक संन्यासी ने ललकार लगाई—“अरे भागो मत, सामना करो।” स्वामीजी डटकर खड़े हो गये। बन्दर भाग गए। इस घटना से उन्हें प्रेरणा मिली। वे लोगों को कहा करते थे—पशुओं का सामना करो, अविद्या का सामना करो, माया का सामना करो, भागो मत।”

एक बार की घटना है, वे वृन्दावन-यात्रा जा रहे थे। मार्ग में थक गए। कुछ तम्बाकू पीने की रुचि हुई। एक बुड्ढा हुक्का पीता दिखाई दिया। स्वामीजी उसके पास गये और हुक्का मागा पर उसने कहा—“मैं अछूत हूँ महाराज,!” स्वामीजी मन मार आगे बढ़ गये। किन्तु, लौटकर आये और कहने लगे ‘एक संन्यासी को छुआछूत का विचार करना पाप है।’ बुड्ढे ने प्रेमपूर्वक हुक्का दे दिया। विवेकानन्द ने इस घटना के पीछे इस कुसस्कार को तोड़ दिया।

विवेकानन्द केवल दार्शनिक ही न थे वे पक्के देश सेवक और समाज सुधारक भी थे। समाज में उन्होंने कई प्रकार के सुधार किये। स्वामीजी के सुधारों की विशेषता यह थी कि वे जो सुधार समाज में चाहते थे पहिले अपने में करते थे। उसे अपने आचरण का अङ्ग बना लेते थे। इसका फल यह होता था कि उनकी बातों का श्रोतागण पर जीवन प्रभाव होता था।

आचरण-निर्माण करना परमावश्यक देश-सेवा है। देश में आचरण की कमी रहने से उसकी किसी क्षेत्र में उन्नति नहीं हो पाती है। विवेकानन्द ने इस तथ्य को अच्छी तरह समझ रखा था।

भारतीय धर्म का विदेशों में लोग अनादर करते थे। देशवासी भी उसे ढकोसला समझने लगे थे। विवेकानन्द को यह सब अच्छा नहीं लगा।

वे जानते थे इस देश में विदेशी शिक्षा ने विषवमन कर दिया है। विदेशियों के इंगित पर यहां के लोग नाचना पसन्द करते हैं। अपने पूर्व पुरुषों की मानमर्यादा का इस देश के निवासियों को अब विचार नहीं होता। यहां के लोग धर्म का वास्तविक रूप भुला बैठे हैं। यही कारण था कि स्वामीजी का यह विचार पक्का हो गया था कि भारत का पतन धर्म-भ्रष्ट होने के कारण, अपनी निजी सत्ता, अपना निजी व्यक्तित्व गवा देने के कारण हुआ है। वे चाहते थे दुनियां भारत के धार्मिक आदर्शों को जाने,

संसार उनके गुरु रामकृष्ण परमहंस के उपदेशों से लाभ उठाये। विदेशियों की आँखें खोलने, उन्हें भारत का सच्चा स्वरूप दिखाने वे अपने कुछ मद्रासी शिष्यों के अनुरोध पर अमेरिका यात्रा पर जाने को तैयार हो गये।

३१ मई १८९३ को विवेकानन्दजी ने अमेरिका के लिए प्रस्थान किया। वे अमेरिका के शिकागो नगर में 'सर्व-धर्म-सभा' में भाग लेने के उत्सुक थे, पर, पता चला कि वे जब तक किसी मान्य संस्था के प्रतिनिधि न हो उसमें भाग नहीं ले सकेंगे। यह जानकर भी स्वामीजी निराश नहीं हुए। सर्व-धर्म-सभा के होने में अभी समय था। स्वामीजी के पास व्यय के लिये रुपये नहीं थे। वे शिकागो का जीवनयापन मंहगा समझ कर बोस्टन नगर चले गये। यहाँ उनकी भेंट हार्वर्ड विश्वविद्यालय के दर्शन के प्राध्यापक राइट से हुई। राइट विवेकानन्दजी से बड़ा प्रभावित हुआ और बोला 'आप जैसे विद्वान् को तो शिकागो की सर्व-धर्म-सभा में भाग लेना चाहिये।' विवेकानन्द बोले "मैं आया तो इसी उद्देश्य था, पर किसी संस्था के प्रमाण पत्र के बिना मुझे उसमें भाग लेने का अवसर नहीं मिल सकता है।" इस पर राइट महोदय ने कहा—“आप जैसे विद्वानों के लिए प्रमाणपत्र की कोई आवश्यकता नहीं है, मैं आपको सर्व-धर्म-सभा के अध्यक्ष के नाम पत्र लिखे देता हूँ।”

स्वामीजी को और क्या चाहिये था। पत्र लेकर शिकागो रवाना हो गए। मार्ग में पैसों का बटुआ और राइट महोदय की चिट्ठी तथा टिकट साफ हो गए। स्वामीजी परेशान हो गए। विदेश में पैसा पास नहीं, न किसी से जान न पहिचान। स्वामीजी शिकागो तो पहुँचे पर बड़े उदास। दैवात् उन्हें एक अमेरिकी महिला मिली। अपने घर लिवा ले गई। उनका सारा प्रबन्ध कर दिया।

११ सितम्बर, १८९३ को सर्व-धर्म-सभा का उद्घाटन हुआ। स्वामीजी भी इसमें सम्मिलित हुए। प्रतिनिधियों के भाषण प्रारम्भ हुए। अपने ढंग की यह निराली ही सभा थी। हजारों अमेरिका निवासी एकत्रित थे। स्वामीजी का यह अनुभव नया ही था। उनकी छाती घड़क रही थी। गला सूखा जा रहा था। भाषण भी तैयार नहीं था। इतने में ही उनकी बारी आ गई। वे खड़े हुए। सम्बोधन में ही उनकी धाक जम गई। वे

बोले—“अमेरिकावासी प्यारे भाइयो और बहिनो।” तालियों की गडगडा-हट ने उनकी भावी विजय की सूचना दी। स्वामीजी बोले और ऐसे बोले कि अमेरिका में स्वामीजी के हजारों शिष्य बन गये।

अमेरिकनो की आँखें खुल गई। वे हिन्दू धर्म की जो आलोचना किया करते थे वह सब अब उन्हें सारहीन दिखाई देने लगी। लोग उनसे प्रश्न करते करते थे। स्वामीजी उन्हें सन्तोषजनक उत्तर देते थे। शिकागो में भारत के नाम की छाप बैठ गई।

एक सभा में स्वामीजी ने पूछा—“यहा हिन्दू धर्म के जानकर कितने हैं?” सारी सभा में से दो-चार हाथ उठे। इस पर स्वामीजी ने कडक कर कहा—“बस, फिर क्या आप इसी आधार पर हमारे बारे में फतवा देने का साहस करते हैं?”

सब चुप थे। स्वामीजी के चरण छूने को लोग लालायित थे। स्वामीजी से भारतीय सस्कृति के अनुसार व्यवहार करने को अमेरिका सदा उत्सुक रहते थे। शिकागो में घूम मच गई। अब क्या था भारत में भी स्वामीजी के भक्त जाग उठे। उनके आने की प्रतीक्षा करने लगे। उनके भाषणों के कार्यक्रम बनने लगे।

स्वामीजी इङ्गलैंड भी गये। यहाँ भी उनके अनेक शिष्य बने, भाषण हुए, प्रश्नोत्तर हुए, अब इङ्गलैंड में विवेकानन्द ही विवेकानन्द थे। लोग उनकी बहुत प्रणिष्ठा करने लगे। स्वामीजी पुनः अमेरिका लौटे। कुछ दिन रह कर फिर इङ्गलैंड गए। वहा से विश्वभ्रमण किया तब १५ जनवरी, १८९७ को वे लका पहुँचे। वहा ११ दिन धर्म-प्रचार करने के पश्चात् भारत आये। भूमि पर जहाँ उन्होंने पहिला चरण रखा, वहा रामानन्द के महाराज सेतुपति ने एक स्मृति-स्तम्भ बनवा दिया। उस पर अङ्कित है—“सत्यमेव-जयते” सत्य की ही जीत होती है। तोपो से स्वामीजी की सलामी हुई।

परिश्रम प्रेम

स्वामीजी का शरीर साथ नहीं दे रहा था पर वे बराबर धर्म प्रचार करते रहे। रामकृष्ण परमहंस का डका उन्होंने सारे ससार में बजवा दिया। ‘रामकृष्ण मठों की उन्होंने अमेरिका और इङ्गलैंड में स्थापना की।

भारत में भी बेलूर में उन्होंने रामकृष्ण मिशन खोला। अब भी ग्रह मिशन पर्याप्त विशाल पैमाने पर काम कर रहा है। इसकी शाखाएँ विदेशों

में भी चल रही हैं। इस संस्था के द्वारा मानव जाति की महान् सेवाएँ होती रहती हैं।

स्वामीजी के परिश्रम द्वारा जो काम इतने से समय में हुआ उतना सौ वर्षों में संभव नहीं था। इसका कारण था उनका परिश्रमशील जीवन का ढंग। वे काम से कभी थकते न थे। उनकी इसी क्षमता के बल पर उन्होंने गुरु का सदेश अखिल संसार को सुनाकर मानवता को नया मोड़ देने में सफलता प्राप्त की। और मानव को मानव रहने का आदेश देकर संसार की बहुत बड़ी सेवा की।

सन् १९३० ई० की ४ जौलाई को माता के मन्दिर में बैठकर 'चलो मन निज निकेतन' गीत जी भर के गाया। पीछे समाधि साधकर बैठ गये और सदा के लिये सो गये। पर भारत को जगा गये। उनके ये शब्द कभी भुलाये नहीं जा सकेंगे—“लंबी रात अब बीत गई जान पड़ती है। घोर दुःखों का अन्त होता दीख रहा है। मौत की बेखबरी में सोया हुआ मुर्दा मानो जाग रहा है। जो अंधे हैं वे देख नहीं सकते और जो पागल हैं वे समझ नहीं सकते कि हमारी मातृभूमि अपनी गहरी नींद से अब जाग रही है। यह अब और नहीं सोयेगी। यह देखो, भारत माता धीरे २ आँखें खोल रही है…………”।

भारत माँ की आँखें खोलने वाला स्वयं आँखें मूंद रहा था—विधि का विधान बड़ा विचित्र है। स्वामीजी आज हमारे बीच में नहीं हैं, पर उनके उपदेश उनका कार्य—प्रेम और देश-प्रेम आज भी भारत के कोने २ में उनको जीवित किये हुए है। खेद है इस देश में आज फिर से “जो अंधे हैं वे देख नहीं सकते और जो पागल हैं वे समझ नहीं सकते कि हमारी मातृभूमि अपनी गहरी नींद से अब जाग रही है…………” स्वामीजी के इन्ते शब्दों के प्रत्यक्ष निदर्शन मौजूद हैं। ईश्वर देश को आस्था के अवतार विवेकानन्द के चरणचिह्नों पर चलने की सद्बुद्धि प्रदान करें।

: ११ :

आज का भामाशाह-बजाज

नहीं चाहिये मुझे राज्य, या स्वर्ग और नवजीवन दान ।

केवल मुझे बुखी जन-सेवा, का भगवान् दे दो वरदान ॥

—सहृदय

ये जिन लोगों की भावना होती है वे नर रूप में देवता कहलाने वाले बहुत ही कम लोग होते हैं । भरे २ शरीर का गोरे रंग का शान्त आकृति वाला राजस्थान की वर्तमान राजधानी, पुरानी जयपुर रियासत के सीकर प्रान्तान्तर्गत काशीकावास ग्राम का निवासी, निर्धनवश का अवतंस यह बालक किसी दिन देश के लिए वरदान भी बन सकेगा यह कौन जानता था ।

इस युवक का नाम था जमनालाल । इनके पिता कनीराम साधारण स्थिति के अग्रवाल वैश्य थे । पर भावी के पट के पीछे क्या छिपा है कौन कह सकता है यही जमनालाल आगे चलकर महात्मा गांधी के दायें हाथ, मनोनीत पुत्र और देश के बड़े दानी, सेवक तथा सुधारक के रूप में ख्याति प्राप्त करने में सफल हुए ।

बन्म और वर्धावास

४ नवम्बर, १८८६ को आपने अपनी माग्यवती माता बिरधीबाई को सुपूती बनाया । बाल्यकाल के कुछ ही दिन काशिकावास में बिताने का अवसर रहा, पर इस अल्पकाल में ही आपने सारे ग्राम में अपनी प्रतिभा की छाप डाल दी थी । इन्हें देखकर प्रायः सभी कहा करते थे, “लडका बड़ा होन-हार है ।

एक दिन की बात है, वर्धा के सेठ वच्छराज सपत्नीक काशिकावास आये । कनीरामजी और उनकी पत्नी बिरधीबाई को अपने निस्संतान होने की दुःखगाथा सुनाते २ वच्छराजजी की धर्मपत्नी रो उठी । यह देखकर बिरधीजी का दयालु और करुणाद्र हृदय सहानुभूति से भर गया । वे कहने लगी “यह जमना भी तुम्हारा ही है, आप क्यों रज करती हैं ।”

वाक्दान

‘परोपकाराय सतां विभूतयः’ जो संसार में आते ही परोपकार्य हैं उनके वचन, मन, कर्म एक होते हैं और साथ ही दृढ़ भी। विरधीबाई ने सहज स्वभाव से जो कुछ कहा था वह ‘वाक्दान’ हो जायगा और उन्हें अपने पुत्र से सदा के लिये विलग कर देगा कदाचित् पूर्व ज्ञात होता वे संभलकर मुंह खोलतीं। पर अब क्या था ‘जमनालालजी’ का पुत्र होते भी पुत्री की तरह ‘वाक्दान’ हो चुका था।

वच्छराजजी की इच्छा पूरी हुई, हमारे चरित्र नायक (सेठ जमनालाल बजाज) राजस्थान छोड़कर वर्धा चले गये। वहां नये पिता की ममता, लाड़-प्यार और नयी माता का नया दुलार उनकी पूर्व संस्कार-जन्य स्मृतियों को घूमिल करने लगा। धीरे-२ वे काशिकावास के सुख-स्वप्नों को, माता-पिता, सगे-सघाती एवं स्वर्णिम बाल-संस्मरणों को भूलने लगे। अब वे वर्धावासी बन गये। यहीं उनकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध हुआ। आपने केवल ४ श्रेणी तक मराठी पढ़कर थोड़ी सी अंग्रेजी जानकर अपनी शिक्षा समाप्त करदी और अपना व्यापार का जो पैतृक कार्य था उसमें दक्षता प्राप्त करने लगे। यद्यपि स्कूली पढ़ाई उन्होंने समाप्त कर दी थी, पर उनकी प्रायोगिक शिक्षा जन्मभर चलती रही। जमनालालजी बजाज बहुश्रुत व्यक्ति थे, उनका संगति-मंडल बड़ा विशाल था। उनकी जानकारी व्यापक, पूर्ण और विविध थी।

सेठजी उन प्राणियों में थे जिन्हें ईश्वर संसार में कुछ करने के लिये, बल्कि कुछ ऐसा काम करने के लिये ही भेजते हैं जिससे संसार का, नर-समाज का, प्राणिमात्र का उपकार संभव हो। भगवान् उनके मार्ग को स्वयं प्रशस्त करते चलते हैं ताकि उनके जन्म लेने के उद्देश्य में बाधा न पड़ सके।

पिता पुत्र विच्छेद

क्या पता उपर्युक्त लक्ष्यपूर्ति के बहाने के लिए ही ईश्वर प्रेरणा ने वच्छराजजी में भावविकार उत्पन्न कर दिया था। एक दिन सहसा वच्छराजजी कह उठे “जमनालाल तुझे हमसे नहीं, हमारे पैसे से प्रेम है।” जमनालालजी तो स्पृहा रहित और विगत मानापमान वाले व्यक्ति थे। प्रसन्न मुद्रा से आपने उनके यह कहते ही कि “अपने घर जाओ” बिस्तर गोल कर लिए और वर्धा छोड़ दिया।

संशोच्छेद

परन्तु, आपको यह सह्य न हो सका कि इनके धर्म-पिता इनके चले आने पर भी संशयित दशा में दुःखी रहें। आपने बच्छराजजी को एक पत्र लिखा जिसमें उनके दत्तक पुत्र होने के नाते उन्हें अपने धर्म पिता की सम्पत्ति में जो स्वत्व प्राप्त होता था उसका स्पष्ट त्याग कर देने का लेख था।

श्रीगणेशजी,

सिद्ध श्री वर्धा शुभ स्थान पूज्य वच्छराजजी रामधन सूं लिखी चि० जमना का पांवां घोके बांचीज्यो। अठे उठे श्री लक्ष्मीनारायणजी महाराज सदा सहाय छे। अपरंच समाचार एक बांचीज्यो। आपकी तबियत आज दिन हमारे ऊपर निहायत नाराज हो गई सो कुछ हरकत नहीं। श्री ठाकुरजी की मर्जी और गोद लियोडा था जद आप इस तरह कह्यो। सो आपको कुछ कसूर नहीं। जिको हमाने गोद दियो जिनको कसूर छे। आप कह्यो कि तुम नालीस करो सो ठीक बाकी हमारो आपके ऊपर कुछ कर्जो छे नहीं। आपको कमायडो पीसो छे। आपकी खुसी आवे सो करो। हमारो कुछ आप ऊपर अधिकार छे नहीं। हमां आपसूं आज मिती ताईं तो हमारे बारे में अथवा हमारे ताईं जो खर्च हुयो सो हुयो बाकी आज दिन सूं आप कनेसूं एक छदाम कोड़ी हमां लेवांगा नहीं अथवा मंगावांगा नहीं। आपके मन में कोई रीत का बिचार करज्यो मतना। आपकी तरफ हमारी कोई रीत को हक आज दिन सूं रह्यो छे, नहीं और श्री लक्ष्मीनारायणजी सूं अर्ज ये है कि आपको शरीर ठीक राखे और आपके हाल २२-२५ बरस कायम राखे और हमा उठे जांवगा उठे सूं थाके ताईं इस माफक ठाकुरजी सूं विनती करागा। और हमारे से जो कुछ कसूर आज ताईं हुयो सो सब माफ करजो और आपके मन में हो कि सब पीसा का साथी है, पीसां का ताईं सेवा करे छे सो हमारे मन मांते आपके पीसां की बिलकुल छे नहीं। और जो ठाकुरजी करेगा तो आपके पीसे की हमारे मन में आगे भी आवेगी नहीं। कारण हमारो तकदीर हमारी साथ छे। और पीसो होकर हमां काई करांगा। म्दाने तो पीसा नजीक रहने की बिलकुल परवा छे नहीं। आपकी दया से श्री ठाकुरजी का भजन सुमिरने जो कुछ होवेगा सो करांगा। सो इस जनम मांही भी सुख पावांगा। आप

आपके चित्तमा प्रसन्नता राखियो। कोई रीत की फिकर करज्यो मत ना। सब झूठा नाता छे। कोई कोई को पोतो नहीं और कोई कोई को दादो नहीं। सब आप आपका सुख का साथी छे। झूठो पसारो छे। आप हाल ताईं मायाजाल में फंस रह्या छौ। हमां आज दिना आपके उपदेश सूं मायाजाल सूं छूट गया छूं। आगे भी श्री भगवान संसार सूं बचायेगा। और आपके मन मां इस तरह बिलकुल समझो मतना कि हमारे ऊपर नालिस फरयाद करेगा। हमां हमारे राजी खुसी सूं टिकिट लगाकर सही कर दीनी छे कि आपके ऊपर अथवा आपकी स्टेट, पीसा, रुपया, गहना गाढ़ी और कोई भी समान ऊपर आज से बिलकुल हक रह्यो नहीं सो जाणजो। और हमारे हाथ को कोई को करजो छे नहीं। कौई ने भी एक भी पीसो देनो छे नहीं सो जाणज्यो। और तो समाचार छे नहीं। और समाचार तो बहुत छे परन्तु हमारे सूं लिखो जावे नही।

सम्बत् १९६४ मितो बैसाख बिदी २ मंगलवार।

यह पत्र नहीं दस्तावेज थी, उस पर टिकट लगाकर हस्ताक्षर किए गए थे, यह त्याग यह उदारता, यह आत्मबल क्या किसी साधारण वैश्य से हो सकता था। यह तो किसी विशिष्ट आत्मा का ही लक्षण था। सेठजी के इस त्याग को जाने दे उनके जीवन में अन्य अनेक महान् त्यागों के बड़े २ निदर्शन है जिन्हें देखकर कहना पड़ता है कि भामाशाह की आत्मा का ही पुनर्जन्म हुआ हो तो आश्चर्य नहीं, क्योंकि जमनालालजी का उत्तर जीवन देश के लिये लगभग वैसा ही रहा है जैसा भामाशाह का अपनी मातृभूमि मेवाड़ के लिए रहा। बल्कि हम तो कहेंगे कि जमनालालजी का जीवन मममंशाह से विशाल और अधिक दायित्वपूर्ण था क्योंकि इनका त्याग किसी एक स्थान के लिए न होकर समूचे राष्ट्र के लिये था। वच्छराजजी ने इनके इस पत्र पर प्रसन्न होकर इन्हें पुनः धर्मा बुलाकर अपना सब कुछ इनको दे डाला।

त्याग और राष्ट्रसेवा के बीज

जमनालालजी सगन के पक्के थे और धन को सदुपयोग से व्यय करने के अवसर को कभी न जाने देते थे। यही क्या इनका एक-एक आचरण देश के लिये, समाज के लिये और व्यक्ति के लिए अनुकरणीय और उपयोगी था।

एक घटना है कि एक बार तत्कालीन देशभक्त प० बालगङ्गाधर तिलक ने अपने 'केसरी' पत्र के लिए धन की अपील निकाली। जमनालालजी को पत्र पढ़ने का बड़ा व्यसन था। 'केसरी' पत्र उन दिनों देश की भावनाओं को बल देने में बहुत उपयोगी सिद्ध हो चुका था। जमनालालजी ने इस अपील को पढ़ा और अपनी स्थिति पर विचार किया। इन दिनों इन्हें १) रुपया प्रति दिवस हाथ खर्च के लिये मिलता था। इन्होंने इस रुपए को बचाकर १००) रु० एकत्रित किए और 'केसरी' की सहायतार्थ भेज दिए।

इस दान में 'बजाजजी की राष्ट्रभक्ति, दानशीलता और उदारता के बीज छिपे थे जो आगे चलकर बड़े रूप में देश के उपकारक सिद्ध हुए।

यथायोग्य का संग

स० १९५८ में सेठजी का विवाह लक्ष्मणगढ़ (सीकर, जयपुर) निवासी सेठ गिरधरलालजी की भाग्यशालिनी पुत्री जानकीदेवी के साथ हो गया। यही से सेठजी का वैभव और यश का जीवन प्रारम्भ होता है। जानकीदेवी जी में सेठजी को एक सच्ची और कर्मठ सहघर्मिणी मिली थी। जानकीदेवी बजाज, जमनालालजी बजाज के नाम के साथ देश में सदा याद रहेंगी। उन्होंने पति के हर कार्य में सच्चा सहयोग दिया। बल्कि कटु आलोचनाओं को सहकर परिस्थितियों के अनुकूल रहने पर भी सदा सेठजी की आकांक्षाओं और सकल्पों को पूर्ण करने में कुछ उठा न रखा।

वे पढ़ी लिखी न थीं, पर प्रौढ़ावस्था में मराठी व हिन्दी का बोध किया और समाज-सुधार की अग्रदूत बनी। समाज में चलने वाली रूढ़ियों को तोड़ कर उन्होंने जगरण दिया, स्त्रियों में तो उन्होंने क्रान्ति ही लादी। जेवर और पर्दे की प्रथा का जानकी जी ने खुलकर विरोध किया। मारवाड़ी समाज की आंखें खुल गईं, समाज की दृष्टि आदर्श मारवाड़िन जानकी बजाज पर जा टिकी।

वैभवकाल

यौवन और वैभव, फिर क्या शेष रहा। महाकवि बिहारी के कथनानुसार 'किते न अवगुण जग करै नै, बै, चढ़ती बाह्र बाली उक्ति का अपवाद यह बजाज दम्पति इतिहास में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है।

वच्छराजजी का निधन हो गया। बजाजजी स्वतन्त्र थे पर, त उनमें उच्छ्वलता आई न वैभव मंद। उन्होंने संयम से जीवन-प्रापन कर सम्बद्ध,

कलकत्ता तथा अन्य कई स्थानों पर दुकानें खोलों, व्यापार को बढ़ाया, बहुत पैसा कमाया। आपकी व्यापार क्षमता देखकर, आपको कई कम्पनियों में डायरेक्टर पद समर्पित, किये गये। सरकार ने भी आपका सम्मान किया, आनरेरी मजिस्ट्रेटों और रायबहादुरी की पदवी प्रदान की

धीरे २ जमनालाल बजाज जमींदार बने। राजकर्मचारियों और पुलिस के कार्यकर्त्ताओं के सम्पर्क में आये। उन्हें इन लोगों की दर्प भरी व्यवहार शैली पसन्द न आई। इनसे वे अपना सम्पर्क संकुचित बनाने लगे।

बजाजी ने अपने वैभव काल में देश की उपयोगी संस्थाओं की बढ़ी २ आर्थिक सहायताएँ की। कई संस्थाओं का निर्माण किया तो कई संस्थाओं का उद्धार और संचालन किया।

नया सम्पर्क

लगभग यही समय था, महात्मा गांधी दक्षिणी अमेरिका से लौटे। इस समय सेठजी अपना कोई मार्गदर्शक खोजने में लगे थे, वे महामना मालवीयजी, जगदीशचन्द्र वसु, श्रीकृष्णदास जाजू, लोकमान्य तिलक आदि के सम्पर्क में आ चुके थे। परन्तु, गांधी विचारधारा ने उन्हें बहुत प्रभावित किया। वे गांधीजी के पुत्र बन गये। गांधीजी ने स्वयं स्वीकार करते हुए एक जगह लिखा है—“जमनालालजी किस प्रकार मेरे पुत्र बनकर रहे, यह हिन्दुस्तान वालों ने कुछ-कुछ अपनी आंखों से देखा है जहाँ तक मैं जानता हूँ, मैं कह सकता हूँ कि ऐसा पुत्र आज तक किसी को नहीं मिला।”

सेठजी ने गांधीजी के सहवास में रहकर अपने को देशसेवा में तन्मय कर लिया। पैसे के प्रति तो आपको पहले से ही मोह नहीं था, अब तो और भी नहीं रहा। पैसे का सदुपयोग आप देशहित में करने लगे। आप मारवाड़ी विद्यार्थी-गृह' सेलावाटी मारवाड़ी शिक्षा-मंडल, मारवाड़ी अग्रवाल सभा आदि अनेक संस्थाओं के जन्मदाता, संचालक व प्रबोधक थे।

आपने अपनी 'रायबहादुरी' को देशहित के लिये ही तिलांजलि दे डाली। अब आप खुलकर राजनीति में कूद पड़े। और दिन रात देश-सेवा में लिप्त हो गये। सन् १९२० में आप नागपुर कांग्रेस अधिवेशन के स्वागतसम्यक् निर्वाचित हुए। आपके स्वागत और प्रबन्ध की छाप अमिट रही। आप राष्ट्रीय मतां की सूची में समुचित स्थान पा चुके थे और जीवन भर राष्ट्रीय महासभा के कोषाध्यक्ष रहकर तो आपने देश पर अपने खरेपन का ऐसा सिकका बिठा

दिया कि देश ईमानदार के नाम पर सेठजी का आदर्श सामने सदा रखता रहेगा ।

आपने १९२१ में गांधीजी के अमहयोग आन्दोलन में तन, मन और धन से योग दिया । 'तिलक-स्वराज्य फण्ड' के लिये १ करोड़ की अपील निकाली और उसमें १ लाख का सर्वप्रथम योग आपके ही दान का हुआ ।

हिन्दी प्रेम का उर्वरक स्रोत

सेठजी का हृदय हिन्दी-प्रेम का उत्स था । आपने इन्दौर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर १० हजार रुपया दक्षिणा में हिन्दी प्रचारार्थ दान दिया । हिन्दी पत्रों को गहायना दी, बम्बई हिन्दी ग्रन्थागार, सस्ता साहित्यमंडल आदि कई प्रकाशन-मस्थान भी खोले । इसी प्रकार की ठोस हिन्दी सेवाओं का परिणाम था कि सेठजी मद्रास हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति निर्वाचित हुए थे ।

शान्तिम व्रत

सेठजी की नमता अपनी जन्मभूमि से सदा रही । वे जयपुर तथा जयपुर के तत्कालीन प्रान्तों के उद्धार के लिए कभी पश्चात् पद नहीं हुए ।

एक बार सीकर और जयपुर में मनमुटाव हो गया । परिस्थिति भयङ्कर हो गई । गोली चलने की नौबत आ गई । आप बीच में पड़े और शान्ति से झगड़ा निपट गया । सेठजी के व्यक्तित्व का प्रभाव इस घटना से प्रत्यक्ष देखने में आ जाता है ।

सेठजी का यह दबदबा जयपुर राज्य का तत्कालीन अंग्रेजी दीवान नहीं देख सका । उसने सेठजी पर राज्यप्रवेश-निषेध का आदेश लागू कर दिया । सेठजी ने पहिले विनम्र निवेदन द्वारा इस अवैध आदेश को लौटाने की प्रार्थना की; परन्तु, अंग्रेज शासक ने अपनी शक्ति के मद में उनकी एक न सुनी ।

अन्ततोगत्वा सेठ जी ने आदेश मंजूर कर दिया और जयपुर रियासत की सीमा में प्रविष्ट हो गये । दो बार उन्हें पकड़-पकड़ कर राज्यसीमा से बाहर कर दिया गया पर जब वे तीसरी बार फिर आयें तो उन्हें बन्दी बना लिया गया । बस, फिर क्या था बात की बात में सत्याग्रह छिड़ गया । ५०० व्यक्ति बन्दीग्रह चले गये । गांधीजी के आदेश पर सत्याग्रह स्थगित कर

संस्था बनी। सेठजी उसके अध्यक्ष रहे। राज्य और प्रजामण्डल में समझौता हुआ। सेठजी पर मे प्रवेश-निषेध आदेश उठा लिया गया।

अन्त में सेठजी ने मच्चे अर्थों में देश सेवा करते हुए राजा दिलीप की भाति गोमेवा व्रत ले लिया और गौमाता की सेवा में मारा जीवन अर्पण कर दिया। आपने 'गो-सेवा-संघ' की स्थापना की। इस प्रकार स्वतंत्रता-संग्राम का यह अन्यतम सेनागी, स्वतंत्रता के मंदिर की प्रथम सीढ़ी पर चढ़ते २ ही ११ फरवरी, १९४२ को डम अमार ससार को छोड़ गया। यह प्रसन्नता का विषय है कि आप अपने पीछे ऐसे पुत्र रत्न श्री कमलनयन बजाज को छोड़ गये हैं जो आपके उद्देश्यों का पालन करते हुए देश एवं समाज की अब भी सेवा कर रहे हैं।

देन

वे देश को एक ऐसी प्रेरणा दे गये जो सहस्राब्दियों तक यहाँ के नवयुवकों को उद्बोधनशील बनाये रहेगी। आदर्श जीवन, सादा रहनसहन, नयम और मर्यादा, लग्न और हृदयता, सेवा और उपकार, न्याय और सत्यता इन युगों का सेठजी अवतार थे। ऐम नरसिंह जिस देश, जाति और समाज में जन्म लेते हैं वह समाज बन्ध और स्पर्द्धनीय है।

हमें विश्वास है देश जब २ स्वभावसुलभ निर्बलतावश अपने आदर्श से विमुख सा होगा, सेठजी का आदर्श उसे आत्मबल दान देता रहेगा।

ऐसा ही हो।

: १२ :

डॉ० शान्तिस्वरूप भटनागर

आज बिना विज्ञान के जीवन है निस्सार ।

आओ मिल विज्ञान का करदें जीर्णोद्धार ॥

—सहृदय

जगत् और विज्ञान

समसार—भौतिक ससार के रहस्य अनेक हैं । विज्ञान के चश्मे से भी वे पूरे तो नहीं देखे जा सकते पर उनमें से बहुत से देखे और दिखाये जा सकते हैं ।

विज्ञान ने आज भू से नभ पर्यन्त आतक फैलाया हुआ है । भौतिकी शास्त्र और रसायन शास्त्र इन दो मोटे भागों में विश्व विज्ञान के अध्ययन का लाभ उठा रहा है ।

भारत का अध्यात्मविज्ञान सर्वोपरि था, है और कदाचित् आगे भी रहे । परन्तु, विज्ञान-क्षेत्र में भारत का स्थान प्राचीन युग में क्या था इस पर सम्यक्तया कह सकना संभव नहीं है । अति प्राचीनकाल में तो भारत का भी भौतिक विज्ञान पर्याप्त उन्नत था परन्तु सम्प्रति भारत, विज्ञान के क्षेत्र में पिछड़ गया यह मान लेना कोई बुरी बात नहीं ।

भारत में विज्ञान के अकाल का कारण है उसकी १ सहस्राब्दी से भी अधिक गुलामी । इस पर भी विगत डेढ़ या दो शतियों की गुलामी शिक्षा । अंग्रेजों ने देश की शिक्षा को उसके सच्चे अर्थ से बहुत दूर ले जा पटका था । वे नहीं चाहते थे इस देश में ठोस विद्वान् हों क्योंकि ऐसा होता तो उनके पजे २०० वर्ष भी जमे रहना कठिन था ।

परन्तु, भारत-वसुन्धरा निर्बीज नहीं है । उसमें मेधावी विद्वान् उत्पन्न करने की अमोघ शक्ति आज भी विद्यमान है । गुलामी के विगत २०० वर्षों में भी हम देश ने क्या अध्यात्मविज्ञान के क्षेत्र में और क्या भौतिकविज्ञान

के क्षेत्र में बड़े २ रत्न उत्पन्न किये हैं। डा० शान्तिस्वरूप भटनागर इस देश के ऐसे ही रत्नों में से एक हैं। आपके रामायनिक ज्ञान पर मुग्ध होकर विदेशों ने भी आपकी मुक्त कठ से प्रशंसा की है।

जन्म और शिक्षा

डा० भटनागर जैसे रसायनशास्त्री आज विश्व में इनेगिने है। भारत-गौरव भटनागरजी का जन्म मार्च, १८९५ ई० में हुआ था। आपको पिता का लाड-दुलार कम मिल पाया। वे आपके बालकपन में ही स्वर्ग सिधार गये। आपका पालन-पोषण आपके बाबा ने किया था। आपका बाल्य कोई विशेष उज्ज्वल नहीं था। किन्तु, भटनागर इस देश के नागर-मंडल में अपने क्षेत्र के सर्वोत्कृष्ट विद्वान् होंगे यह उस समय कौन कह सकता था ?

प्रारम्भ में आपने मैट्रिक पास करते ही शिक्षक का कार्य करना प्रारम्भ कर दिया था। धीरे २ बी० एस० सी० पास करके आप दयालसिंह कालेज लाहौर में डिमानस्ट्रेटर का कार्य करने लगे।

एम० ए० सी० पास करने के पश्चात् कर्ज लेकर उच्च ज्ञान प्राप्ति के लिये लंदन गये।

भटनागर महोदय ने अपनी प्रतिभा, परिश्रमशीलता और अध्यवसाय के बल पर क्रिमी प्रकार से प्रीवीकॉमिल को २५० पाँड की छात्रवृत्ति प्राप्त की और सन् १९२० में लन्दन विश्वविद्यालय से डी० एम० सी० की डिग्री लेकर भारत वापस लौटे।

कार्य-क्षेत्र और विकास

आज डाक्टर भटनागर रसायनशास्त्र के धुरंधर विद्वान्, महान् शोधक और पारगत प्रोफेसर के रूप में देश का गौरव बढ़ाते हुए भारत सरकार के इंडस्ट्रियल एण्ड साइंटिफिक रिसर्च, विज्ञान-विभाग के डायरेक्टर पद तक को सुशोभित कर गये हैं।

आपके ज्ञान से देश ने रसायन के क्षेत्र में बड़ी उन्नति की है। आपके अनुसंधानों के लिए देश आपका चिरकृणी रहेगा।

आपके रसायन सम्बन्धी अनेक प्रामाणिक और महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। आपके ग्रन्थ न केवल केवल इस देश की निधि हैं, अपितु विदेशों में भी उनके महत्व को नतमस्तक होकर स्वीकार किया जाता है।

विदेशों में कीर्ति

श्री भटनागर १९२८ ई० में ३८ वीं विज्ञान कांग्रेस की रसायन शाखा के अध्यक्ष रहे यह कम गौरव का विषय नहीं है । इस सम्मान के कारण आपकी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति बढ़ी और उत्तरोत्तर विदेशों में आपकी नाम की छाप घँठती चली गई ।

इसके पश्चात् आप अनेक विज्ञान सम्मेलनों में भारत के प्रतिनिधि बनाकर भेजे गये ।

स्वतंत्रता के पश्चात्

स्वतंत्रता के पश्चात् देश में विज्ञान के प्रचार-प्रसार की माग बढ़ी, विद्वानों का अभाव खलने लगा तब भटनागर जैसे विद्वानों के वास्तविक मूल्यांकन का समय आया ।

डा० भटनागर विदेश के अच्छे से अच्छे रसायनशास्त्री के साथ शास्त्रार्थ ही नहीं नवीनतम प्रयोग का भी चमत्कार दिखा सकने में समर्थ थे । किसी भी अग्रज रासायनिक से आज भारत विश्वासपूर्वक आपकी तुलना सकता है । भौतिकी में जैसे डा० रमन का नाम बड़े आदर से लिया जाता है । रसायन में डा० या० स्व० भटनागर का नाम कभी भुलाया नहीं जा सकेगा ।

उद्योग और रसायन

उद्योग और रसायन का चोली दामन का सम्बन्ध है । रसायन का क्षेत्र बड़ा व्यापक है । इन्डस्ट्री की उन्नति आज के युग में रसायन शास्त्र के सहयोग को छोड़कर संभव नहीं है ।

रसायन का सम्बन्ध जीवन के प्रत्येक प्रमुख कार्य में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष बना ही रहता है । आज देश को रसायनिकों की बड़ी आवश्यकता है ।

भौतिक अभ्युदय के लिए विज्ञान की-भौतिक और रसायन दोनों ही शाखाओं की उन्नति वाञ्छनीय है ।

आशाएँ और दायित्व

डा० भटनागर जैसे विज्ञानरत्नों से ही देश और समाज को हृद आशा है कि वे भारत के विज्ञान क्षेत्र को वैभवशाली बनाकर आनेवाली पीढ़ी को और आनेवाले युग को परमुखापेक्षी न रहने देंगे । विज्ञान की रसायनशाखा

को आत्मनिर्भर बनाने का आप पर बड़ा दायित्व है ।

अकेले भटनागरजी भारत के नाम को चमकाने में समर्थ है यह तो प्रसन्नता का विषय है, पर पप्रति रामायनिकों की बढ़ती हुई मांग है उसे पूरा करना भी देश का कर्तव्य है ।

विदेशों में विशेषज्ञता प्राप्त करना सबके लिए सुलभ नहीं है इसीसे डा० भटनागर प्रभूति विद्वानों का देश में आज बहुत बड़ा महत्त्व हो गया है । देश के छात्रों को यदि आपके जैसे लोगों के ज्ञान से कुछ लाभ हाँ सकता है तो मानो आपकी विद्वत्ता का स्थायी उपयोग देश कर लेता है । हम आशा करेंगे देश के छात्र डा० शान्तिस्वरूप के व्यक्तित्व का अनुकरण करके अपना चरित्र निर्माण करते हुए सच्चे अर्थ में देशहित की दिशा में बढ़ेंगे ।

— — — — —

